अभिनव कृषि

वर्ष-8 अंक-2 जून, 2026 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

विशेषांक

खरीफ फसल उत्पादन तकनीकी, समन्वित कीट, रोग एवं खरपतवार, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन

प्रसार शिक्षा निदेशालय

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)-324001

mahindra Rise
mahindra TRACTORS
TOUGH HARDUM
Mahindra Yuvo Tech+
Now with more + points
4WD
M SPTO
12 SPEED & 6 SPEED
PTO Speed Option
2000 kg
Lifting Capacity
Stabilizer Bar
For Adjustment Of Heavy Equipment In Muddy Conditions
(Available in 475, 575, 585)
Longer Top Link
Water Separator
Increases Engine Life
DIGI SENSE 4G
Get information about your tractor at all times
No. 1 In Warranty
6 YEARS WARRANTY
Mahindra NOVO 605 DI PS
Makes even the impossible possible
3532 cc engine
Advanced PSM transmission
Shuttle shift gear
2700 kg lift capacity
Side shift gear & SLIPTO
अधिकृत विक्रेता : यादव ट्रेक्टर्स
• सेल्स • सर्विस • स्पेयर्स
F-316, भामाशाह मण्डी रोड़, इन्द्रप्रस्थ इण्ड. एरिया, रोड़ नं. 6, कोटा-324005 (राज.) फोन : 9928344380, 9928038201

अभिनव कृषि

वर्ष-8 अंक-2 जून, 2026 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

संरक्षक

डॉ. विमला डूंकवाल
कुलगुरू, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक मण्डल

डॉ. महेन्द्र सिंह
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रधान संपादक एवं प्रकाशक

डॉ. के.एम. शर्मा
सह निदेशक, प्रसार शिक्षा
संपादक

डॉ. योगेन्द्र कुमार मीणा
विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान विज्ञान)
संपादक एवं समन्वयक

डॉ. घनश्याम मीना
आचार्य (पशु विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. राकेश कुमार बैरवा
आचार्य (शस्य विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. एच.पी. मेघवाल
सह–आचार्य (कीट विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. सेवाराम रूण्डला
विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. गुंजन सनाढ्य
विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. रूप सिंह
सहा. आचार्य (पादप रोग विज्ञान)
सह–संपादक

सुश्री सरिता
तकनीकी सहायक
सह–संपादक

मनोनीत सलाहकार मण्डल

डॉ. एम.सी. जैन
निदेशक, अनुसंधान

डॉ. मुकेश चन्द गोयल
निदेशक, पी.एम.एण्ड ई.

डॉ. डी.के. सिंह
निदेशक, मानव संसाधन विकास

डॉ. आई.बी. मौर्य
अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

डॉ. एस.के. जैन
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, कोटा

डॉ. एन.एल. मीणा
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, हिण्डौली, बून्दी

सदस्यता शुल्क

- ☞ त्रैमासिक (प्रति अंक) 50 रू.
- ☞ वार्षिक (चार अंक) 200 रू
- ☞ आजीवन (15 वर्ष)1500 रू.

विज्ञापन दरें

(i)	अन्तिम सम्पूर्ण (रंगीन)	रू. 10,000/-
(ii)	प्रथम या अन्तिम पृष्ठ के पीछे (रंगीन)	रू. 7,000/-
(iii)	अन्तिम आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 6,000/-
(iv)	प्रथम या अन्तिम पृष्ठ के पीछे आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 4,000/-
(v)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (रंगीन)	रू. 5,000/-
(vi)	अन्दर का आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 3000/-
(vii)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 5,000/-
(viii)	अन्दर का आधा पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 2,500/-

नोट : यदि विज्ञापन वर्ष के सभी चार अंकों के लिए दिया जाता है तो उपरोक्त दरों में 25 प्रतिशत की कमी की जायेगी।

सदस्यता एवं नवीनीकरण हेतु

खाता धारक : DEE, Agriculture University, Kota
बैंक : ICICI BANK, Nayapura, Kota
खाता संख्या : 687801700345
IFSC : ICIC0006878

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

"अभिनव कृषि"
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
बोरखेड़ा, बारां रोड़ कोटा (राजस्थान) – 324001
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com दूरभाष : 0744- 2326727

प्रकाशक: प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
मुद्रक : डामयण्ड प्रिन्टर्स, नई धानमण्डी, कोटा (राज.) मो. 9414231079

नोट– "अभिनव कृषि" में आलेख प्रकाशन हेतु लेखकों का सदस्य होना अनिवार्य है तथा लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है। इस पत्रिका में दिये गये विज्ञापनों के उत्पादों आदि की कृषि विश्वविद्यालय, कोटा किसी प्रकार की अनुशंसा नही करता है।

डॉ. महेन्द्र सिंह
निदेशक प्रसार शिक्षा

Directorate of Extension Education
प्रसार शिक्षा निदेशालय
AGRICULTURE UNIVERSITY, KOTA
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Borkhera, Baran Road, Kota 324 001 (Raj.)
बोरखेडा, बारां रोड, कोटा 324001 (राज.)

प्रधान संपादक की कलम से.....

देश में कृषि उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य से पिछले कई दशकों से रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों, फफूंदनाशकों एवं पादप वृद्धि नियामकों का व्यापक उपयोग किया जा रहा है। इन कृषि आदानों ने उत्पादन वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, किंतु इनके अत्यधिक एवं असंतुलित उपयोग से कृषि लागत में निरंतर वृद्धि होने के साथ–साथ मानव स्वास्थ्य, पशु स्वास्थ्य, मृदा स्वास्थ्य तथा पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे हैं। कृषि उत्पादों में रासायनिक अवशेषों की बढ़ती मात्रा के कारण निर्यात में भी अनेक चुनौतियाँ उत्पन्न हो रही हैं। परिणामस्वरूप कृषि एवं प्रकृति के मध्य स्थापित संतुलन प्रभावित हुआ है तथा कृषि की दीर्घकालिक स्थिरता पर प्रश्नचिह्न खड़े हो रहे हैं।

रासायनिक कृषि आदानों के अंधाधुंध उपयोग से सतही एवं भू–जल प्रदूषण, मृदा जैविक कार्बन में कमी, लाभकारी सूक्ष्मजीवों का ह्रास तथा पोषक तत्वों के असंतुलन जैसी समस्याएँ बढ़ी हैं। मृदा की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में गिरावट के कारण किसानों के लिए निरंतर एवं लाभकारी उत्पादन प्राप्त करना कठिन होता जा रहा है। वर्तमान परिस्थितियों में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, मृदा स्वास्थ्य सुधार तथा सतत कृषि पद्धतियों को अपनाना समय की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

वर्तमान समय खरीफ फसलों की तैयारी का महत्वपूर्ण चरण है। इस अवधि में उन्नत एवं क्षेत्र विशेष के लिए उपयुक्त किस्मों का चयन, मृदा परीक्षण, जैविक खादों एवं फसल अवशेषों का उपयोग, ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई तथा अन्य कृषि आदानों का वैज्ञानिक प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। इन उपायों को अपनाकर किसान कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के साथ–साथ मृदा की उर्वरता एवं पर्यावरणीय संतुलन को भी बनाए रख सकते हैं।

प्रस्तुत अंक में कृषि वैज्ञानिकों एवं विषय विशेषज्ञों द्वारा तैयार किए गए अनेक सामयिक एवं उपयोगी लेख सम्मिलित किए गए हैं, जिनमें सोयाबीन में खरपतवार प्रबंधन, सोयाबीन की उन्नत किस्में, सोयाबीन के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन, उड़द उत्पादन की उन्नत तकनीक, खरीफ मक्का उत्पादन तकनीक, सतत कृषि एवं उन्नत उत्पादन प्रणालियाँ, ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई का महत्व, हरी खाद का उपयोग, खरीफ फसलों के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन, धान एवं मिर्च के प्रमुख कीट–रोग, समेकित कृषि प्रणाली मॉडल, पॉलीहाउस में सूत्रकृमि प्रबंधन तथा फलों के पोस्ट–हार्वेस्ट प्रबंधन जैसी महत्वपूर्ण जानकारियाँ शामिल हैं। हमें विश्वास है कि ये लेख किसानों, कृषि विद्यार्थियों, कृषि अधिकारियों तथा कृषि से जुड़े सभी पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे।

अंत में, मैं इस अंक के प्रकाशन में योगदान देने वाले सभी लेखकों, संपादक मंडल एवं सलाहकार मंडल के सदस्यों का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ तथा उनके निरंतर सहयोग के लिए शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ। साथ ही, सभी पाठकों से प्राप्त होने वाले सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत है, जो पत्रिका को और अधिक उपयोगी एवं प्रभावी बनाने में सहायक होंगे।

(महेन्द्र सिंह)

वर्ष-8 अंक-2

अभिनव कृषि

जून, 2026

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	मक्का की उन्नत किस्में एवं उत्पादन तकनीक पीयूष चौधरी, के. एम. शर्मा, एच. के. सुमेरिया, एवं धर्मपाल सिंह	1–4
2.	सोयाबीन की उन्नत प्रजातियाँ एवं उनकी विशेषताऐं भरत लाल मीना एवं सुनीता पाण्डेय	5–8
3.	सोयाबीन फसल में खरपतवार प्रबंधन डी. एस. मीणा, बी. के. पाटीदार, आर. के. महावर, सी. बी. मीणा, एवं सुशीला कलवानियॉ	9–11
4.	सोयाबीन फसल के कीटों की पहचान व प्रबंधन बी. के. पाटीदार, आर. के. महावर, सी. बी. मीणा, डी. एस. मीणा एवं सुशीला कलवानियॉ	12–13
5.	उड़द उत्पादन : उन्नत तकनीक एवं प्रबंधन नरेन्द्र पादड़ा, खुशवन्त बी. चौधरी, शुभम शर्मा और सुमन कुमार	14–16
6.	सतत कृषि एवं उन्नत उत्पादन प्रणाली पूनम फौजदार, खजान सिंह, पी. के. पी. मीना एवं मंजू मीना	17–19
7.	मृदा स्वास्थ्य सुधार के लिए ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई राजेंद्र कुमार यादव, आर. एस. नारोलिया, विनोद कुमार यादव, राकेश कुमार यादव एव हरफूल मीना	20–21
8.	हरित खाद : मिट्टी की सेहत के लिए लाभकारी सोनल शर्मा, मनोज कुमार शर्मा, श्रवण कुमार यादव	22–24
9.	धान की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग और उनका प्रबंधन डी. एल. यादव, के. एम. शर्मा एवं मनोज कुमार	25–27
10.	मिर्च के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबन्धन बी. के. पाटीदार	28–29
11.	समेकित कृषि प्रणाली मॉडल : आत्मनिर्भर किसान की ओर एक कदम जगदीश प्रसाद तेतरवाल, महेन्द्र सिंह, राकेश कुमार यादव एवं रिशिका चौधरी	30–31
12.	पॉली हाउस में सूत्रकृमि का प्रकोप– समस्या व समाधान जुगल किशोर सिल्ला एवं भरत लाल मीना	32
13.	आधुनिक कृषि में बीज गोलीकरण (सीड पेलेटिंग) की उपयोगिता मनोज कुमार एवं संध्या	33

मक्का की उन्नत किस्में एवं उत्पादन तकनीक

पीयूष चौधरी, के. एम. शर्मा, एच. के. सुमेरिया, एवं धर्मपाल सिंह
कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा एवं राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर

मक्का का खाद्यान्न फसलों में विशेष स्थान है। उत्पादन की दृष्टि से गेहूँ एवं धान के बाद इसका तीसरा स्थान है। अधिक उत्पादन क्षमता होने के कारण मक्का को विश्व में खाद्यान्न फसलों की "रानी" कहा जाता है। राजस्थान में विशेष रूप से कृषि जलवायु खण्ड चतुर्थ "अ" एवं चतुर्थ "ब" में मक्का एक महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है तथा यह आदिवासी एवं गरीब किसानों का प्रमुख भोजन भी है। राजस्थान में पिछले वर्षों में मक्का उत्पादन के क्षेत्र में नए आयाम स्थापित हुए हैं, जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 2023–24 में राज्य में खरीफ एवं रबी दोनों मौसमों में लगभग 8,63,688 हेक्टेयर क्षेत्र में मक्का की खेती की गई तथा औसत उत्पादकता 2229 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर रही। मक्का उत्पादन में वृद्धि का प्रमुख कारण वैज्ञानिकों द्वारा विकसित संकर (हाइब्रिड) किस्मों का विकास तथा किसानों द्वारा इन उन्नत किस्मों का व्यापक स्तर पर उपयोग करना है। इसके बावजूद राजस्थान की मक्का उत्पादकता अभी भी राष्ट्रीय औसत से काफी कम है। कम उत्पादकता के मुख्य कारणों में लगभग 80 प्रतिशत क्षेत्र में वर्षा आधारित खेती होना, देशी किस्मों का प्रयोग, वर्षा की अपर्याप्तता एवं असमान वितरण, कृषि प्रबंधन में अनियमितता तथा उन्नत तकनीकों एवं प्रबंधन संबंधी जानकारी का अभाव प्रमुख हैं।

- **खेत की तैयारी :** एक स्वच्छ, गहराई से जुता हुआ खेत बुवाई के लिए आदर्श माना जाता है। पौधों की जड़ों को पर्याप्त नमी मिलती रहे तथा जलभराव से होने वाले नुकसान से बचाव के लिए फसल को मेड़ों पर बोना उपयुक्त रहता है। दूसरा अच्छा विकल्प यह है कि बुवाई खेत की समतल सतह पर की जाए तथा मौसम अनुकूल होते ही खेत में जल निकासी हेतु थोड़ी–थोड़ी दूरी पर उथली नालियाँ बनाई जा सकती है।

- **बुवाई का समय :** जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो, वहाँ वर्षा प्रारम्भ होने से लगभग 15 दिन पूर्व बुवाई कर देनी चाहिए। इससे वर्षा शुरू होते ही पौधों की बढ़वार अच्छी होती है तथा अग्रिम फसल का लाभ भी प्राप्त होता है। जहाँ खेती पूर्णतः मानसून पर निर्भर हो, वहाँ वर्षा होते ही यथाशीघ्र बुवाई प्रारम्भ कर देनी चाहिए। मैदानी क्षेत्रों में सामान्यतः मक्का की बुवाई का उपयुक्त समय 15 जून से 15 जुलाई तक माना जाता है।

- **उन्नत किस्मों का विवरण :**

संकर तथा संकुल किस्में निम्न तीन परिपक्वता वर्गों में बांटी गई है।

(क) पूर्ण–कालिक परिपक्वता : इस वर्ग की संकर तथा संकुल किस्में पकने में 96–110 दिन अथवा इससे अधिक समय लेती है। इस वर्ग की किस्में उन स्थानों पर उगाए जाने के लिए उपयुक्त है जहाँ सिंचाई के उपरान्त समय पर बुवाई हो सके अथवा वर्षाकाल सुनिश्चत हो।

❖ **संकर किस्में :**

- **प्रताप क्यू, पी. एम. संकर 1 (2013) :** एकल संकरण द्वारा विकसित पीले दानों वाली यह संकर किस्म 85–90 दिनों में पककर 28–30 क्विं/हैक्टेयर उपज देती है। वर्षा पोषित क्षेत्रों के लिये अनुमोदित इस किस्म में 8.87 प्रतिशत प्रोटीन तथा एमिनों एसिड (लाइसिन एवं ट्रिप्टोफेन) संतुलित मात्रा में होता है। यह किस्म धारीदार पर्ण आच्दाद झुलसा रोग एवं टी.एल.बी. रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधक क्षमता रखती है।

- **एच. क्यू. पी. एम. 1 (उच्च गुणवत्तायुक्त प्रोटीन मक्का) (2005) :** एकल संकरण द्वारा विकसित पीले दानों वाली यह संकर किस्म 95–105 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज 40–50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होने के साथ ही 9–10 प्रतिशत प्रोटीन एवं आवश्यक ऐमिनो एसिड की मात्रा सही अनुपात में पाई जाती है।

- **एच.क्यू., पी.एम.–5 (उच्च गुणवत्तायुक्त प्रोटीन मक्का) (2007) :** एकल संकरण द्वारा विकसित इस किस्म का दाना नारंगी व गोल होता है। इसमें 9.8 प्रतिशत प्रोटीन तथा एमिनों एसिड (लाइसिन एवं ट्रिप्टोफेन) संतुलित मात्रा में पाये जाते है। यह पत्ती झुलसा रोग एवं तना छेदक के लिए मध्यम प्रतिरोधी तथा उच्च उर्वरक स्तर पर अधिक उत्पादन देने में सक्षम है जिसकी औसत उपज 30 से 40 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

- **गंगा सफेद–2 (1978) :** यह सफेद दानों वाली संकर किस्म है। इसके पौधों की ऊँचाई 170 से 200 सेंटीमीटर होती है। 105 से 110 दिन में पकने वाली यह किस्म 45 से 50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। यह किरम सिंचित क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त है।

❖ **संकुल किस्में :**

- **माही धवल (1996)** सफेद कठोर दानों वाली इस संकुल किस्म की ऊँचाई 160 से 200 सेंटीमीटर होती है। 95 से 100 दिन में पक कर यह किस्म 36 से 45 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। संभाग के सिंचित एवं अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त यह किस्म पत्ती धब्बा व तुलासिता रोग के साथ ही तना छेदक कीट के लिए भी सामान्यतः प्रतिरोधक क्षमता रखती है।

(ख) मध्यम परिपक्वता : इस वर्ग की किस्में 86–95 दिनों में पक जाती है।

मध्यमकालीन संकर किस्में :

- **डी.एच.एम. 117 (2010) :** एकल संकरण द्वारा विकसित मध्यम समय में पकने वाली (90–95) इस संकर किस्म के दाने पीले–नारंगी तथा गोल होते है। इस किस्म की उपज 40–45 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। यह किस्म प्रमुख रोगों के प्रति सामान्य प्रतिरोधक क्षमता वाली है। आड़ी नहीं पड़ने वाली इस किस्म के पौधे भुट्टों के सूखने तक हरे रहते है।

(ग) अगेती/अति अगेती परिपक्वता : इस वर्ग की किस्में 86 से कम दिनों में पक जाती है। उन क्षेत्रों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं जहाँ बाढ़ जल्दी आ जाती है अथवा नदी का कछार क्षेत्र है। इन किस्मों का उपयोग अन्तरा–सस्य अथवा अल्पावधि वाली जायद फसलों के लिए किया जा सकता है।

❖ **संकर किस्में :**

- पी.ई.एच.एम.–2 (1997) : यह एकल संकर किस्म 80 से 85 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके दाने मोटे, आकर्षक तथा नारंगी रंग के होते है। यह किस्म सामान्य परिस्थितयों में 45 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। इसका तना मजबूत तथा भुट्टा लंबा होता है। यह प्रमुख रोगों तथा कीटों के लिए प्रतिरोधक है। यह किस्म वर्षा पोषित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

- **प्रताप संकर मक्का–1 (2003) :** यह किस्म कम समय (80–82) में पककर 35–38 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। इसके दाने सफेद व चमकदार तथा पौधे की ऊँचाई 170–180 से.मी. होती है। यह किस्म वर्षा पोषित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

- **प्रताप मका–3 (2004) :** महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर द्वारा विकसित यह एक संकुल किस्म है। इस किस्म का दाना सफेद, कठोर, सौटी एवं चमकीला है। यह किस्म 75 से 78 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। पौधे की ऊंचाई 170–180 से.मी. है और भुट्टे पौधे के मध्य लगते है। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 40–45 क्विंटल प्रति हैक्टर है। यह मृदुरोमिल तुलासिता, तना विगलन रोग के प्रति रोधक क्षमता तथा तना छेदक कीट के प्रति सहिष्णु किस्म है। यह किस्म राजस्थान, गुजरात एवं मध्य प्रदेश के असिंचित क्षेत्रों के लिए विशेष उपयुक्त पाई गयी है।

- डी.एच.एम.–121 (2014) : यह संकर किस्म मध्यम अवधि 90–95 दिन में 80–85 विव. उपज देने वाली है। इस किस्म के दानों का रंग पीला एवं मध्यम आकार का होता है। यह खरीफ एवं रबी दोनों मौसम के लिए उपयुक्त तथा किस्म प्रमुख रोगों एवं कीटों के प्रतिरोधी किस्म हैं।

- **प्रताप संकर मक्का–3 (2015) :** यह मक्का की पीले दाने वाली संकर किस्म है। यह 84–88 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज 55–60 क्विटल/हैक्टेयर है। पौधा ऊँचा एवं मजबूत होता है। पौधे की औसत ऊँचाई 190–210 सेमी होती है। इसमें सिल्क 51–53 दिन में आ जाते हैं। सिल्क का रंग लाल होता है। यह किस्म मुख्य बीमारियों जैसे पत्ती झुलसा रोग, तना गलन रोग के प्रति सहिष्णु है तथा टर्लीकम पत्ती झुलसा रोग, कर्कुलेरिया पत्ती धब्बा रोग एवं कोषयुक्त सूत्रकृमि के प्रति मध्यम सहिष्णु है। इस किस्म की विशेषता यह है कि इसका पौधा पकने के बाद भी हरा रहता है।

- प्रताप मका–9 (2016) : यह पीले दाने वाली मक्का की संकुल किस्म है। यह किस्म मध्यम समय 81–87 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके दाने का रंग नारंगी पीला होता है। इस किस्म की औसत उपज 45–50 क्विंटल/ हैक्टेयर है। पौधा ऊँचा एवं मजबूत होता है। पौधे की औसत ऊँचाई 177–227 सेमी होती है। इसमें सिल्क 42–65 आ जाते है। यह किस्म प्रमुख रोग जैसे मेंडिस पत्ती झुलसा रोग, तना गलन, तुलासिता रोग, भूरी पत्ती तुलासिता रोग के प्रति सहिष्णु है। मक्का के तना छेदक कीट के प्रति मध्य सहिष्णु है।

- **प्रतापराज संकर मक्का 1095 (2021) :** यह एकल संकर मक्का राजस्थान सिंचित एंव वर्षा पौषित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। यह 95–100 दिन में पककर तैयार हो जाती है। यह किस्म 63 क्वि. प्रति हैक्टेयर पैदावार देती है।

- **प्रताप संकर मक्का 6 (2024) :** यह पीले दानों वाली किस्म 84–85 दिन में पककर तैयार हो जाती है। यह सिंचित व असिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। यह किस्म 66 क्वि. प्रति हैक्टेयर पैदावार देती है। पकने के बाद भी इसका पौधा हरा रहता है। यह किस्म मुख्य बीमारियों जैसे पत्ती झुलसा रोग, तना गलन रोग के प्रति सहिष्णु है तथा टर्लीकम पत्ती झुलसा रोग, कर्कुलेरिया पत्ती धब्बा रोग एवं कोषयुक्त सूत्रकृमि के प्रति मध्यम सहिष्णु है। इस किस्म की विशेषता यह है कि इसका पौधा पकने के बाद भी हरा रहता है।

❖ **संकुल किस्में :**

- **नवजोत (जे 684) (1983) :** यह पीले दानों की संकुल किस्म है जो 80 से 85 दिन में पककर 30 से 35 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की पैदावार देती है। यह किस्म वर्षा पोषित क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त है।

- **जी. एम. – 6 (2003) :** सफेद दानों वाली मक्का की यह संकुल किस्म हैं। यह 80 से 85 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी उपज 25 से 30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर व ऊँचाई 190 से 200 सेमी तक होती है।

- **माही कंचन (1992) :** पीले मोटे दानों वाली यह किस्म 75 से 80 दिन में पककर 32 से 38 38 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। इसकी ऊँचाई 172 से 180 से.मी. होती है। यह किस्म पत्ती धब्बा, तुलासिता, तना गलन रोग तथा तना छेदक कीट के लिए मध्यम प्रतिरोधक है। अल्प समय में पकने के कारण कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए यह किस्म लाभकारी है।

- **माधुरी (1990) :** मक्का की यह संकुल किस्म मीठे दानों वाली है। इसकी खेती हरे भुट्टे बेचने के लिए की जाती है। इसके भुट्टे 60 से 65 दिन में तोड़े जाते है। इसके दानों का रंग पीला होता है। इस संभाग में इसकी खेती रबी एवं जायद मौसम में शहर एवं कस्बों के आसपास के क्षेत्रों के लिए अधिक फायदेमंद है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन : खेत की जुताई के बाद 10–15 टन प्रति हेक्टेयर अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद खेत में समान रूप से बिखेरकर देशी हल अथवा कल्टीवेटर द्वारा मिट्टी में अच्छी प्रकार मिला

देनी चाहिए। मिट्टी परीक्षण परिणाम के अभाव में सिंचित फसल में 90 किलो नत्रजन एवं 30 किलो फास्फोरस प्रति हेक्टेयर देवें। बुवाई के समय एक तिहाई नत्रजन एवं पूर्ण फास्फेट 10 सेन्टीमीटर गहरा ऊर कर देवें। नत्रजन की शेष मात्रा दो बार में अर्थात दूसरी मात्रा बुवाई के 30 दिन बाद तथा तीसरी मात्रा मांजरे निकलने से पूर्व अच्छी तरह मिट्टी में मिलाकर जड़ों पर मिट्टी चढ़ा देवें। असिंचित क्षेत्र में 60 किलो नत्रजन एवं 23 किलो फास्फोरस प्रति हेक्टेयर देवें। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय कतारों में 10–15 सेन्टीमीटर गहरा ऊर कर देवें। शेष आधी नत्रजन की मात्रा खड़ी फसल में मांजरे निकलने के पूर्व वर्षा को ध्यान में रखते हुए अच्छी तरह मिट्टी में मिला कर जड़ों पर मिट्टी चढ़ावें। रबी की फसल में फास्फोरस दिया गया हो तो खरीफ में फास्फोरस देने की आवश्यकता नहीं है। जिन मृदाओं में जस्ते की कमी हो वहां 25 किलो हेप्टाहाइड्रेट जिंक सल्फेट (21%) या 15 किलो मोनोहाइड्रेट जिंक सल्फेट (33%) प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व खेत में देवें। मक्का में एजोटोबेक्टर एवं पी.एस.बी. कल्चर का प्रयोग कर नत्रजन एवं फास्फोरस उर्वरकों में 25 प्रतिशत की कमी की जा सकती है।

- **पौध संख्या एवं दूरी :** अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि कटाई के समय खेत में लगभग 65–70 हजार पौधे प्रति हेक्टेयर उपलब्ध रहें। इसके लिए पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी क्रमशः 60 सेमी × 20 सेमी रखनी चाहिए।
- **बीज दर एवं बुवाई गहराई :** एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए लगभग 20–25 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। बीजों की बुवाई 4–5 सेमी गहराई पर करनी चाहिए, जिससे पौधों का सुदृढ़ विकास एवं समान वृद्धि सुनिश्चित हो सके।
- **सिंचाई प्रबंधन :** मक्का उन क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है जहाँ पर्याप्त वर्षा होती हो तथा फसल अवधि के दौरान मिट्टी में पर्याप्त नमी बनी रहे। स्थायी एवं उच्च उत्पादन सुनिश्चित करने के लिए वर्षा की अनुपस्थिति में वैकल्पिक सिंचाई स्रोत उपलब्ध होना आवश्यक है, ताकि आवश्यकता पड़ने पर समय पर सिंचाई की जा सके। विशेष रूप से पुष्पन एवं दाना भराव अवस्था में सिंचाई अत्यंत आवश्यक होती है।
- **अंतः फसल प्रणाली :** कम अवधि वाली दलहनी फसलें जैसे मूंग, उड़द, लोबिया आदि तथा तिलहनी फसलें जैसे मूंगफली एवं सोयाबीन को मक्का के साथ सफलतापूर्वक अंतः फसल के रूप में उगाया जा सकता है। मक्का की दो पंक्तियों के बीच एक या दो पंक्तियों में अंतः फसल बोने पर मक्का की उपज पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता तथा अतिरिक्त उत्पादन एवं आय प्राप्त होती है।
- **खरपतवार नियंत्रण :** मक्का की फसल को शुरू के 20 से 30 दिन तक खरपतवार से मुक्त रखना चाहिये। अतः खेत से बुवाई 20–25 दिन व 40–45 दिन पर निराई गुडाई कर खरपतवार निकालें। मिलवां खेती में एट्राजिन नहीं छिड़कें। निराई गुड़ाई सम्भव नहीं हो सके तो खरपतवार नष्ट करने के लिये बुवाई के तुरन्त बाद प्रति हेक्टेयर आधा किलो एट्राजिन सक्रिय तत्व को 500 लीटर पानी में घोल कर फ्लेट फेन नोजल से छिड़कें। मक्का में टश्वपरामेजोन 25.2 ग्राम / हेक्टेयर (35.6 प्रतिशत एस.सी.) या टेम्बोट्राइन (42 प्रतिशत एस.सी. 287 मिली/ हेक्टेयर सक्रिय तत्व) का बुवाई के 15–20 दिन बाद छिड़काव करने पर संकरी व चौड़ी पत्तियों वाले खरपतवारों पर प्रभावी नियंत्रण पाया गया है।

❖ **कटाई एवं भंडारण :** दाने के लिए उगाई गई मक्का की कटाई तब करनी चाहिए जब फसल शारीरिक परिपक्वता प्राप्त कर ले तथा दानों में लगभग 25–30 प्रतिशत नमी शेष हो। भुट्टों को अच्छी तरह सुखाने के बाद लगभग 20 प्रतिशत नमी की अवस्था में शेलिंग करनी चाहिए। भंडारण अथवा मंडी में विक्रय हेतु दानों में नमी की मात्रा लगभग 14 प्रतिशत होनी चाहिए। भुट्टों का लंबे समय तक ढेर बनाकर भंडारण नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है।

- **मक्का में लगने वाले प्रमुख कीट एवं रोग और उनका प्रबंधन**

1. **मक्का का तना छेदक (Stem Borer) :** मक्का का तना छेदक एक अत्यंत हानिकारक कीट है, जो फसल को भारी क्षति पहुँचाता है। मादा कीट पत्तियों की निचली सतह पर मध्य शिरा के पास समूह में अंडे देती है। अंडों से निकलने वाली सूंडियाँ प्रारम्भिक अवस्था में पत्तियों को खुरचकर खाती हैं तथा बाद में तने के पर्णगुच्छ में प्रवेश कर जाती हैं। इसके कारण पत्तियों में एक समान दूरी पर गोलाकार छिद्र दिखाई देते हैं।

प्रबंधन उपाय :

- मक्का की अत्यधिक जल्दी बुवाई नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अग्रिम बुवाई में तना छेदक का प्रकोप अधिक होता है।
- मक्का के साथ दलहनी फसलों को अंतःफसल के रूप में बोने से तना छेदक का प्रकोप कम होता है तथा कुल उत्पादन में वृद्धि होती है।
- कीट प्रभावित पौधों को खेत से निकालकर नष्ट कर देना चाहिए।
- फसल कटाई के बाद कीट प्यूपा अवस्था में अवशेषों में जीवित रहता है, इसलिए फसल अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए तथा डंठलों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर सुरक्षित भंडारित करना चाहिए।
- कीट प्रतिरोधी किस्मों का चयन एवं उपयोग करना चाहिए।
- नीम की पत्ती अथवा नीम बीज अर्क (10 प्रतिशत) का छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर करना लाभकारी होता है।
- अंड परजीवी ट्राइकोग्रामा किलोनिस (Trichogramma chilonis) का 1.5 लाख प्रति हेक्टेयर की दर से पौध उगने के 10–12 दिन बाद सायंकाल के समय दो बार प्रयोग करना चाहिए।

2. फॉल आर्मीवर्म :

- फॉल आर्मीवर्म अमेरिका में मक्का एवं अन्य फसलों को हानि पंहुचाने वाला एक लेपिडोप्टेरियन गण का कीट है। इस कीट के लार्वा के सिर पर उल्टी वाई (A) का निशान दिखाई देता है। इसके साथ ही इसके लार्वा के शरीर के आठवें खण्ड पर वर्गाकार आकृति में चार बिन्दु पाये जाते हैं। पौधों पर नुकसान की पहचान छोटा लार्वा पौधों की पत्तियों को खुरचकर खाता है जिससे पत्तियों पर सफेद धारियां या निशान दिखाई देते हैं। बड़ा होने पर लार्वा पौधों की ऊपरी पत्तियों को खा जाती है। साथ ही मक्का के पोटे में घुसकर पत्तियां खाती

रहती है। जिसके परिणामस्वरूप पत्तियों पर गोल–गोल एवं लम्बे आकार के छिद्र एक ही कतार में नजर आते हैं।

- **नियंत्रण :** मक्का की अगेती बुवाई करें। प्यूपा से वयस्क बनने को रोकने के लिए भूमि में नीम की खली 250 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग करें। मक्का में फाल आर्मी वर्म के नियंत्रण हेतु बुवाई के 20 से 25 दिन बाद क्लोरेंट्रानिलीप्रोल 18.5 एस.सी. 200 मिली प्रति है अथवा फ्लुबेंडियामाइड 480 एस.सी. 150 मिली प्रति हेक्टेयर अथवा इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 एस.जी. 200 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

3. **गुलाबी तना छेदक :** इस कीट की इल्लियाँ हल्की गुलाबी रंग की लाल, भूरे सिरे वाली होती है। अण्ड़े से बाहर निकलने के बाद पर्ण में छेद कर तने में प्रवेश करके उसे खाती है। फलस्वरूप पौधे पीले पड़ जाते हैं।
4. **भुट्टा भेदक सूंड़ी :** इस कीट की मादा (पतंगा) पत्तियों पर अपने अण्ड़े देती है। जिनसे निकलने वाली सूंड़ियों शुरूआत में सिल्क एवं मांजर को खाती है। बाद में भुट्टे में प्रवेश कर जाती है। और भुटटे के दानों को खाती है, साथ ही विष्टा के रूप में गन्दगी निकाल कर पूरे भुट्टे को खराब कर देती है। मक्का के दानों में दूध बनने की अवस्था पर इन सूड़ियों द्वारा सर्वाधिक नुकसान पहुँचता है।

प्रबन्धन:

- भुट्टों पर कार्बोरिल 50 डब्ल्यू. जी. घुलनशील चूर्ण को 4 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- फेरोमोन ट्रेप 8–10 प्रति हैक्टेयर लगायें।
- एन.पी.वी. 250 एल.ई. प्रति हैक्टेयर छिड़काव करें।

5. **फड़का (ग्रासहॉपर) :** इस कीट का प्रकोप लगभग 5 माह तक (जून–जुलाई से प्रारम्भ होकर सितम्बर–अक्टूबर) तक रहता है। मानसून की वर्षा होते ही खेत की पालियों, सिंचाई के धोरों या पड़त भूमि में अण्डों से निकलते शिशु (निम्फ) प्रारम्भ में पालियों की घास खाते है। बाद में मक्का की पत्तियों को खाते है। अधिक आक्रमण पर सिर्फ फसल का डण्ठल ही खड़ा रह जाता है। वयस्क फड़का अपने शरीर के वजन से 5–6 गुना तक आहार (भोजन) लेता है।

प्रबन्धन:

- खेत की गहरी जुताई, पालियों की सफाई एवं पड़त भूमि को समतल कर, कृषि काम में लेवें।
- कड़के की प्रथम एवं द्वितीय अवस्था पर नियंत्रण अच्छा रहता है। अत: प्रकाश पाश या खेत पर शाम के समय अलाव जलाकर या टीन / चादर के चारों और चिपकने वाले पदार्थ कोलतार, ग्रीस लगाकर खेत की पलियों पर घुमाने से फड़के चिपक जाते है। जिनको बाद में एकत्र कर नष्ट कर दें।
- मानसून की शुरूआत से 10–15 दिन के अन्दर यदि फड़के के शिशु (निम्फ) क्रियाशील हों तो पालियों एवं धोरों पर मिथाईल पैराथियॉन 2 प्रतिशत चूर्ण को 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर के हिसाब से भुरकाव करें।

❖ **मक्का के प्रमुख रोग :**

6. **तना विगलन रोग :** यह मक्का का प्रमुख रोग है। इस रोग से मांजरे आने तक पौधा हरा रहता है। परन्तु इस समय पौधा अचानक मुरझा कर सुखने लगता है। भुट्टे सूख जाते हैं। पोटे ढ़ीले पड़ जाते है एवं पौधों पर उलटे लगने लगते है। इस रोग का संक्रमण मांजर आने की अवस्था के समय वर्षा न होने एवं तापमान की वृद्धि की स्थिति में अधिक होता है।

प्रबन्धन:

- इस रोग के प्रकोप से बचने के लिए ग्रीष्मकालीन जुताई करें।
- उचित फसल चक्र अपनाएं ।
- नत्रजन की मात्रा कम रखें एवं इसे तीन की जगह चार या पाँच चरणों में दें।
- पोटाश की मात्रा को दुगुना करें एवं यथासम्भव मांजरे आने के समय खेत को सुखने न दें। इस समय वर्षा न हो तो फसल की तुरन्त सिंचाई करें।
- बुवाई से पूर्व बीजों को कार्येण्डाजिम 2 से 4 ग्राम या साफ 4 ग्राम / कि.ग्रा. से उपचारित कर बुवाई करें।
- जल्द से मध्यम समय में पकने वाली किस्मों को प्राथमिकता दें।

7. **भूरा धब्बा रोग :** इस रोग में पत्तियों एवं शिराओं तथा भुट्टे की पत्ती पर पीले भूरे रंग के गोल धब्बे बन जाते हैं। जो बाद में बड़े होकर गहरे लाल रंग के दिखते है।

प्रबन्धन :

- फसल चक्र अपनाएं
- ग्रीष्मकालीन जुताई करें एवं खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था रखें।
- थाईरम 2–3 ग्राम/कि.ग्रा. की दर से बीज उपचार करें।
- शीर्ष एवं आभासी कंड़वा रोग:
- पौधों के भुट्टों में दानों की जगह काला चूर्ण बन जाता है एवं मांजरो पर काली गांठेनुमा रचनाएं बन जाती है।

❖ **निष्कर्ष :** मक्का एक बहुउपयोगी एवं उच्च उत्पादन क्षमता वाली महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है, जिसका कृषि एवं पोषण सुरक्षा में विशेष योगदान है। वैज्ञानिक एवं उन्नत कृषि तकनीकों जैसे उन्नत बीजों का चयन, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, समय पर बुवाई, समुचित सिंचाई, खरपतवार एवं कीट–रोग नियंत्रण तथा अंत: फसल प्रणाली को अपनाकर मक्का की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। राजस्थान जैसे वर्षा आधारित क्षेत्रों में आधुनिक कृषि प्रबंधन तकनीकों का प्रभावी उपयोग किसानों की आय बढ़ाने एवं टिकाऊ कृषि विकास सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। अत: किसानों को वैज्ञानिक खेती पद्धतियों को अपनाकर मक्का उत्पादन को अधिक लाभकारी एवं व्यावसायिक बनाना चाहिए।

❋❋❋

सोयाबीन की उन्नत प्रजातियाँ एवं उनकी विशेषताऐं

भरत लाल मीना एवं सुनीता पाण्डेय
कृषि महाविद्यालय हिंडोली, बूंदी एवं कृषि महाविद्यालय कोटा

किसी भी फसल की अधिकाधिक उत्पादन लेने में उन्नत किस्मों तथा उनके गुणवत्तापूर्ण बीज का महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विकसित उन्नत किस्मों को विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में कम से कम तीन वर्षो के निरन्तर परीक्षण एवं आंकलन में लाभकारी पाये जाने पर ही उन्हे राज्य/क्षेत्र अनुसार विमोचित किया जाता है। इन किस्मों की अधिक उत्पादन क्षमता एवं विशेष गुण होते है जिनसे वह विभिन्न जैविक एवं अजैविक करको का विपरीत परिस्थितियो में भी सामना करने में सक्षम होती है। विगत कुछ वर्षो में देखीं जा रही मोंसम की विषम परिस्थिति एवं इससे होने वाली संभावित नुकसान कम करने हेतु किस्मों की विविधता प्रणाली अर्थात 3–4 किस्मों की खेती की अनुशंसा की गयी है । इस पद्धति को अपनाने से फलियों के चटकने से होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है साथ ही साथ कीट–व्याधियो के नियंत्रण, कटाई–गहाई में प्रयाप्त समय की सुविधा के साथ–साथ किस्मों की अधिकाधिक उत्पादन क्षमता प्राप्त करने का भी लाभ मिलता है।

सोयाबीन की किस्मों के चयन के लिए महत्वपूर्ण बातें

1. रोग प्रतिरोधक क्षमता : आप ऐसी किस्म चुनें जिसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता अच्छी हो। यदि किस्म की रोग प्रतिरोधक क्षमता अच्छी होगी, तो ये रोग आपकी फसल को कम नुकसान पहुंचाएंगे।

2. पकने की अवधि : किस्म चुनते समय ध्यान रखें कि उसकी पकने की अवधि 90 से 100 दिन के बीच हो, और अधिकतम 115 दिन तक हो। इससे ज्यादा अवधि वाली किस्म न लें। यदि आप मैकेनिकल या कंबाइंड हार्वेस्टर से कटाई करते हैं तो ऐसा चयन करें जो फली जमीन से 10–15 सेमी. ऊपर बनने लगे और पौधे की लंबाई अच्छी हो ताकि कटाई में समस्या न हो।

3. नवीन किस्मों का चुनाव : जितनी पुरानी किस्म होगी, उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता उतनी कम होती जाएगी। इसलिए पुराने बीजों की बजाय दो से तीन अलग–अलग नई किस्में लगाएं ताकि अगर किसी एक में समस्या आए, तो दूसरी किस्म से नुकसान की भरपाई हो पाएं ।

4. उत्पादन क्षमता : किसी भी प्रजाति की अधिक उत्पादन क्षमता होना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। किस्म की न्यूनतम उत्पादन क्षमता कम से कम 8 क्विंटल प्रति एकड़ होनी चाहिए ताकि लागत और मुनाफा संतुलित हो। वर्तमान प्रचलित किस्मों का विवरण निम्नलिखित है।

उन्नत किस्में एवं उनकी विशेषताएं :

क्र.सं.	किस्मों का नाम	पकने की अवधि	उपज (क्विं/हे.)
	जे.एस.95–60	80–85 दिन	18–20
	जे.एस. 20–34	90 दिन	20–25
	जे.एस. 20–29	95 दिन	20–25
	एन.आर.सी. 127	97–101 दिन	20–23
	जे.एस. 20.116	95–100 दिन	20–25
	जे.एस. 20–94	95–98 दिन	20–22
	जे.एस. 20–98	95–98 दिन	20–22
	एन. आर. सी. 138	90–93 दिन	22–24
	आर.वी.एस.एम. 2011–35	95–100 दिन	21–23
	जे.एस. 22–12	90–92 दिन	20–22
	जे.एस. 22–16	90–91 दिन	18–20
	एन.आर.सी. 150	90–92 दिन	20.22
	जे.एस. 23–03	90–91 दिन	21–23
	जे.एस. 23–09	90–92 दिन	20–23

जे.एस. 95–60 : यह किस्म जे.एस. 93–05 से भी 8–10 दिन पूर्व पककर तैयार हो जती है। दाने का आकार अण्ड़ाकार–बोल्ड, नाभिका हल्की भूरी, दाना चमकदार पीला होता है तथा अंकुरण क्षमता 85–90 प्रतिशत होती है। फूलों का रंग नीला होता है। तना, पत्तियाँ व फली चिकनी होती है। पत्तियाँ गहरे हरे रंग की होती है तथा यह 85–88 दिन में पक जाती है। बीज दर 80 किलो प्रति हैक्टेयर एवं लाइन से लाइन की दूरी 30 से.मी. पर औसत उत्पादन 20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होता है। यह किस्म जड़ सड़न व पर्णीय बीमारियों, पत्ती चूसक कीटों, पत्तियां काटने वाले कीटों के लिये प्रतिरोधी सहनशील क्षमता होती है

जे.एस. 20–34 : जे.एस. 20–34 मध्यम ऊँचाई वाली किस्म है जिसके फूल सफेद, पत्तियां गहरे हरे रंग की व तने व फलियां रोये रहित है। बीज मध्यम आकार के, पीले रंग के काली नाभिका वाले होते है। यह किस्म लगभग 90 दिन में पककर 20–25 क्विंटल/हैक्टर तक की पैदावार देती हैं। इस किस्म में तेल की मात्रा 20–22 प्रतिशत होती है। यह किस्म पत्ती खाने वाले कीटों, तना मक्खी, चारकोल रॉट, पत्ती धब्बा रोग, जीवाणु रोग से सहनशील हैं।

जे.एस. 20–29 : जे.एस. 20–29 मध्यम ऊँचाई वाली किस्म है जिसके फूल सफेद, पत्तियां हरे रंग की व फलियों पर भूरे–पीले रंग के रोये पाये जाते है। बीज बडे आकार के, पीले रंग के काली नाभिका वाले होते है। यह किस्म लगभग 95 दिन में पककर 20–25 क्विंटल/हैक्टर तक की पैदावार देती हैं। इस किस्म में तेल की मात्रा 20–22 प्रतिशत होती है। यह किस्म पत्ती खाने वाले कीटों, तना मक्खी, गर्डल बीटल, जीवाणु रोग, चारकोल रॉट, पत्ती धब्बा , झुलसा एवं विशाणु रोग से सहनशील हैं।

एन आर सी 127 : यह मध्यम ऊँचाई की एवं पीले दाने वाली किस्म है जिसकी पत्तिया हल्के हरे रंग की एवं तने व फलियों पर हल्के रंग के रोये पाये जाते है इस किस्म मे फूलों का रंग सफेद एवं बीज मध्यम आकार के पीले रंग के एवं जिसमे नाभिका काले रंग की होती है। यह किस्म लगभग 97–101 दिनो मे पककर लगभग 20–23 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावर देती है इसमे तेल की मात्रा 18–19 प्रतिशत होती है। यह किस्म पीट शिरा मोजेक रोग के प्रति प्रतिरोधी पायी गयी। यह किस्म सोया फोर्टिफाइड़ व्हीट फ्लोर के लिय उपुक्त है क्योकि इसमे (Anti Nutritional factor) के टी आई नहीं पाया जाता है। इस तरह की देश मे यह पहली किस्म हैं।

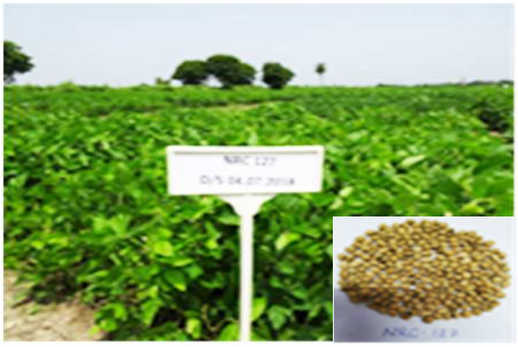

जे.एस. 20–116 : यह मध्यम अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 95–100 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 20–25 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म मे सफेद रंग के फूल, तने व फलियों चिकनी होती है यह मध्यम ऊँचाई की, पीले रंग के दाने एवं उच्च अंकुरण क्षमता वाली किस्म है बीज मध्यम आकार, एवं काले रंग नाभिका वाले होते है। इसमे तेल की मात्रा 19–20: पायी जाती है यह बहू प्रतिरोधी किस्म है जो जैविक व्याधियों जैसे पीला मोजेक, चारकोल सड़न, राइजोक्टोनिया एरियल ब्लाइट, पत्ती धब्बा, तना मक्खी, तना छेदक एवं पत्तीभक्षक इल्लिया के प्रति सहनशील है।

जे.एस. 20–94 : यह मध्यम अवधि मे पकने वाली किस्म है जो जे.एस. 95–98 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 20–22 किव. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है । इस किस्म मे फूलो का रंग बेंगनी एवं तने व फलियों भूरे रंग के रोये पाये जाते है यह मध्यम ऊँचाई की, पीले रंग के दाने एवं उच्च अंकुरण क्षमता वाली किस्म है बीज मध्यम आकार, एवं काले रंग नाभिका वाले होते है। इसमे तेल की मात्र 20% पायी जाती है यह बहू प्रतिरोधी किस्म है जो जैविक व्याधियों जैसे पीला मोजेक, चारकोल सड़न, झुलसन, जीवाणु धब्बा, तना धब्बे एवं तना मक्खी, चक्रभृंग एवं पत्तीभक्षक इल्लियाँ के प्रति सहनशील है।

जे.एस. 20–98 : यह मध्यम अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 95–98 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 20–22 किव. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है। इस किस्म मे फूलों का रंग सफेद एवं तने व फलियों भूरे रंग के रोये पाये जाते है। यह मध्यम ऊँचाई की, पीले रंग के दाने एवं उच्च अंकुरण क्षमता वाली किस्म है। बीज मध्यम आकार, एवं काले रंग नाभिका वाले होते है। इसमे तेल की मात्र 19% पायी जाती है यह बहू प्रतिरोधी किस्म है जो जैविक व्याधियों जैसे पीला मोजेक, चारकोल सड़न, झुलसन, जीवाणु धब्बा, पर्णीय धब्बे एव तना मक्खी, चक्रभृंग एवं पत्तीभक्षक इल्लियाँ के प्रति सहनशील है।

एन. आर. सी. 138 : यह अल्प अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 90–93 दिनों पककर अनुकूल परिस्थितियों मे 20–24 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म मे सफेद रंग के फूल, तने व फलियों गहरे भूरे रंग के रोये पाये जाते हैं यह मध्यम ऊँचाई (44.59 से.मी) की, पीले रंग के दाने पर भूरे रंग की नाभिका वाले होते है। बीज मध्यम आकार जिनके 100 दानों का वजन 9.9.10.20 ग्राम होता है। इसमे तेल की मात्रा 20-10% पायी जाती हैं। यह किस्म पॉड ब्लाइट, टारगेट लीफ स्पॉट एवं पीला मोजेक के लिए मध्य प्रतिरोधी पायी गयी हैं। यह गर्डल बिटिल के लिए कम प्रतिरोधी एवं पर्णभक्षी कीटो के लिए मध्यम प्रतिरोधी पायी गयी है।

आर.वी.एस.एम. 2011–35 : यह मध्यम अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 95–98 दिनों पककर अनुकूल परिस्थितियों मे 20–23 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म मे फूलो का रंग सफेद एवं तने व फलियों पर भूरे रंग के रोये पाये जाते है यह मध्यम ऊँचाई (63–73 से. मी.), दाने अण्डाकार, पीले रंग एवं काले रंग की नाभिका वाले होते है। इसके बीज बडें आकार के जिनका 100 दानों का भार लगभग 13. 10 ग्राम होता हैं। इसमे तेल की मात्रा 19.13% पायी जाती है। यह किस्म पॉड ब्लाइट, टारगेट लीफ स्पॉट एवं पीला मोजेक के लिए मध्यम प्रतिरोधी पायी गयी हैं व तना मक्खी, गर्डल बिटिल एवं पर्णभक्षी कीटो के लिए बहू प्रतिरोधी पायी गयी है

जे.एस. 21–72 : यह मध्यम अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 95–100 दिनों पककर अनुकूल परिस्थितियो मे 23–25 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है। इस किस्म में अर्ध–सिमित वृधि, फूलो का रंग सफेद एवं तने व फलियों पर भूरे रंग के रोये पाये जाते है यह मध्यम ऊँचाई (60–75 से.मी.), दाने अण्डाकार, पीले रंग एवं भूरे रंग की नाभिका वाले होते है। इसके बीज बडें आकार के जिनका 100 दानों का भार लगभग 10–11 ग्राम होता हैं। इसमे तेल की मात्रा 20.10: पायी जाती है। यह किस्म पॉड ब्लाइट, टारगेट लीफ स्पॉट एवं पीला मोजेक के लिए मध्यम प्रतिरोधी पायी गयी हैं व तना मक्खी, गर्डल बिटिल एवं पर्णभक्षी कीटो के लिए बहू प्रतिरोधी पायी गयी है।

जे.एस. 22–12 : यह अल्प अवधि (90–92 दिन) मे पककर अनुकूल परिस्थितियों मे 20–22 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है। इस किस्म में अर्ध–सिमित वृधि, बेंगनी रंग के फूल, तने व फलियों चिकनी होती है यह मध्यम ऊँचाई की, पीले रंग के दाने एवं उच्च अंकुरण क्षमता वाली किस्म है बीज मध्यम आकार, एवं काले रंग नाभिका वाले होते है। बीज मध्यम आकार जिनके 100 दानों का वजन 10.11 ग्राम होता है। इसमे तेल की मात्र 21.69% पायी जाती हैं। यह किस्म पीला मोजेक, चारकोल रोट, पर्णीय झुलसान, एन्थ्रेकनोज, फली झुलसन, तना मख्यी, चक्रभृंग एवं पत्ती भक्षको के लिए मध्यम से उच्च प्रतिरोधी पाई गयी है।

जे.एस. 22–16 : यह अल्प अवधि द्ध90–91 दिनऋ मे पककर अनुकूल परिस्थितियो मे 18–20 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है । इस किस्म में अर्ध–सिमित वृधि, फूलो का रंग सफेद एवं तने व फलियों भूरे रंग के रोये पाये जाते है यह मध्यम ऊँचाई की, पीले रंग के दाने एवं उच्च अंकुरण क्षमता वाली किस्म है। बीज मध्यम आकार, एवं काले रंग नाभिका वाले होते है। 100 दानों का वजन 10.11 ग्राम होता है। इसमे तेल की मात्रा 22.04% पायी जाती हैं। यह किस्म पीला मोजेक, चारकोल रोट, पर्णीय झुलसान, एन्थ्रेकनोज, फली झुलसन आदि बीमारियों के लिए मध्यम प्रतिरोधी से उच्च प्रतिरोधी है एवं तना मख्यी, चक्रभृंग एवं पत्ती भक्षको के लिए मध्यम प्रतिरोधी गयी है।

एन. आर. सी. 150 : यह 90–92 दिनों (अल्प अवधि) मे पककर अनुकूल परिस्थितियो मे 20–22 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है। इस किस्म मे अर्ध–सिमित वृधि, सफेद रंग के फूल, तने व फलियों गहरे भूरे रंग के रोये पाये जाते हैं यह मध्यम ऊँचाई 65–75 से.मी की, पीले रंग के दाने पर काले रंग की नाभिका वाले होते है। बीज मध्यम आकार जिनके 100 दानों का वजन 9.10 ग्राम होता है। इसमे तेल की मात्रा 21.10% पायी जाती हैं। यह किस्म सोया खाध्य पदार्थो में आने वाली गंध के लिए असरकारी लिपोक्सिजिनेज–2 मुक्त किस्म है। यह किस्म चारकोल रोट एवं पीला मोजेक के लिए मध्य प्रतिरोधी पायी गयी हैं। यह गर्डल बिटिल के लिए कम प्रतिरोधी एवं पर्णभक्षी कीटो के लिए मध्यम प्रतिरोधी पायी गयी हैं।

जे.एस. 23–03 : यह अल्प अवधि मे पकने वाली किस्म है, जो 90–93 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियो मे 21–23 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है । इस किस्म मे अर्ध–सिमित वृधि, बेंगनी रंग के फूल, तने व फलियों गहरे भूरे रंग के रोये पाये जाते हैं । यह मध्यम ऊँचाई (60–65 से.मी) की, पीले रंग के दाने पर काले रंग की नाभिका वाले होती है। बीज मध्यम आकार जिनके 100 दानों का वजन 9.10 ग्राम होता है। इसमे तेल की मात्रा 20.10% पायी जाती हैं। यह किस्म चारकोल रोट, एन्थ्रेकनोज, फली झुलसन एवं पीला मोजेक के लिए मध्य प्रतिरोधी पायी गयी हैं।

जे.एस. 23–09 : यह अल्प अवधि मे पकने वाली किस्म है जो 90–92 दिनों पक कर अनुकूल परिस्थितियों मे 20–23 क्वि. प्रति हेक्टर की पैदावार देती है इस किस्म मे अर्ध–सिमित वृधि, बेंगनी रंग के फूल, तने व फलियों गहरे भूरे रंग के रोये पाये जाते हैं यह मध्यम ऊँचाई 60–65 से.मी की, पीले रंग के दाने पर काले रंग की नाभिका वाले होते है। बीज मध्यम आकार जिनके 100 दानों का वजन 9.10 ग्राम होता है। इसमे तेल की मात्रा 20.10% पायी जाती हैं। यह किस्म चारकोल, रोटएन्थ्रेकनोज, फली झुलसन एवं पीला मोजेक के लिए मध्य प्रतिरोधी पायी गयी हैं।

❋❋❋

सोयाबीन फसल में खरपतवार प्रबंधन

डी. एस. मीणा, बी. के. पाटीदार, आर. के. महावर, सी. बी. मीणा एवं सुशीला कलवानियॉ
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा (राज0)

सोयाबीन भारत वर्ष की एक महत्वपूर्ण तिलहनी नकद फसल के रूप में स्थापित हो गई है। लगभग 40 प्रतिशत प्रोटीन, 20 प्रतिशत तेल एवं औषधीय गुणों वाली सोयाबीन एक चमत्कारिक फसल के रूप में जानी जाती है। यद्यपि यह एक दलहनी फसल है, लेकिन हमारे देश में तेल की आवश्यकता को देखते हुये एवं सोयाबीन में तेल की प्रचुरता के कारण इसको तिलहन वर्ग में रखा गया है। देश मे कुपोषण को दूर करने के लिये सोयाबीन का मिश्रण कर आहार की पौष्टिकता को बढ़ाया जा सकता है।

सोयाबीन से दूध, दही, मक्खन एवं पनीर बनाया जा सकता है। रासायनिक विश्लेषण के अनुसार इसका दूध गाय के दूध के समान माना जाता है। इसके तेल में संतृप्त वसा अम्ल कम होने के कारण इसका तेल हृदय रोगियों के लिये विशेष लाभदायक है। तेल निकालने के बाद इसकी खली में भी अच्छी मात्रा में प्रोटीन व खनिज लवण शेष रहते हैं। अतः यह जानवरों को खिलाने व खाद के रूप में भी उपयोगी पाया गया है। राजस्थान में सोयाबीन की खेती मुख्यतः दक्षिणी–पूर्वी क्षेत्र में होती है। कोटा, झालावाड़, बारां एवं बूंदी जिलों के अतिरिक्त चित्तौड़गढ़ एवं प्रतापगढ़ जिले में इसकी खेती व्यापक रूप से की जाती है। उदयपुर एवं बांसवाड़ा जिलों में भी कुछ क्षेत्रों में इसकी खेती की जाती है।

किसानों के लिये सोयाबीन का बहुत अधिक महत्व है, क्योंकि –

- यह कम उर्वरक देने पर भी लाभदायक नकदी फसल हैं
- फसल चक्र पद्धति में भी यह उपयुक्त हैं।
- यह भूमि में वायु मण्डलीय नत्रजन का जमाव करती है और अगली फसल के लिये 40 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर नत्रजन छोड़ती है।

क्यों जरूरी है खरपतवार नियंत्रण : खरपतवारों से होने वाले नुकसान को हम प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकते हैं जैसा कि कीड़ों एवं बीमारियों के नुकसान को देखा जा सकता है। यही कारण है कि किसान खरपतवारों के नियंत्रण में देरी कर जाते है। सोयाबीन खरीफ की फसल होने से इसमें विशेष रूप से खरपतवारों का शुरू से ही अधिक प्रकोप रहता है। सोयाबीन के साथ–साथ एवं इससे पूर्व उग कर खरपतवार, भूमि में मौजूद पोषक तत्वों, ऊपर से दिये गये उर्वरकों (नत्रजन 25–65, फास्फोरस 5–11 व पोटाश 45–102 किग्रा./हैक्टेयर) एवं जमीन की नमी को तेजी से अवशोषित करते हैं और अपनी वृद्धि तेजी से करते हैं जिसके कारण सोयाबीन की फसल को समुचित पोषक तत्व व जल प्राप्त नही हो पाता है। फलस्वरूप फसल की वृद्धि धीमी होती है एवं उपज में भारी कमी हो जाती है।

- कई खरपतवार कीड़ों एवं बीमारियों को आश्रय देते है और बाद में यह कीट एवं बीमारियां फसलों में लग जाती है।
- वर्षा न होने की स्थिति में खरपतवार भूमि की नमी को तेजी से ग्रहण कर ज्यादा पानी वाष्पोत्सर्जन द्वारा उड़ाते है जिससे फसल को पानी कम उपलब्ध होता है।
- अन्ततः ज्यादा खरपतवारों के कारण फसल को काटने में भी परेशानी होती है, जिससे अधिक समय एवं धन खर्च होता है।
- अनुसंधानों द्वारा यह स्पष्ट हो चुका है कि खरपतवार के वजन उनके शुष्क पदार्थ एवं सोयाबीन की प्रति पौधें, कुल उपज में नकारात्मक संबंध होता है। अनियंत्रित खरपतवारों द्वारा सोयाबीन में प्रति पौधें पर फलियां, दानों का भार व आकार, शाखाएं एवं उपज कम (25–85 प्रतिशत) हो जाती है। खरपतवार सोयाबीन की उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं जो स्थान, प्रजाति, समय, खरपतवारों की सघनता, शस्य, जलवायवीय स्थितियों एवं प्रबंधन के स्तर पर निर्भर करती है।

सोयाबीन की फसल में अनेक प्रकार के खरपतवार पाये जाते हैः–

सकरी पत्ती वाले खरपतवार	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
बन्दरा–बन्दरी, छोटाचिकिया, खेतपपरा, दूब, धानभाजी, साँवा घास, क्रेब घास, कारना घाँस, कॉस, दिवालिया, बोकना/कनकऊ, मकरा, पेरा घॉस, मोथा, हिरणखुरी	बड़ी एवं छोटी दूधी, जंगलीचौलाई, सफेदमुर्ग, राममुनीया, कुप्पी, हजारदाना, मंगरा, बड़ी एवं छोटी लुनीया, जंगली जूट एवं सन, ग्राउण्डचेरी, सेसुलिया

उपरोक्त में से सांवा, सुरली, कुंडीजरा, रजान, हजारदाना, दुद्धी, दिवालिया, लहसुवा, भंगरा, भोखना, मोग्दया, सफेदमुर्ग, आदि खरपतवार हाडौती क्षैत्र में प्रमुख है।

खरपतवार नियंत्रण का क्रांतिक समय : सोयाबीन में खरपतवारों के प्रभाव का क्रांतिक समय बोने के 3–5 सप्ताह तक है। इस समय सोयाबीन को खरपतवारों से मुक्त रखा जाये तो अधिक उपज व लाभ मिलता है। अतः जहां तक संभव हो सोयाबीन में खरपतवार नियंत्रण बुवाई के 15–30 दिन तक करना जरूरी होता है।

सोयाबीन की खड़ी फसल में निराई–गुड़ाईः बुवाई के साथ ही खरपतवारों का निकलना शुरू हो जाता है। जहां तक हो सके सोयाबीन को शुरू की अवस्था में खरपतवारों से मुक्त रखा जाना चाहिये। सोयाबीन की फसल में 15–20 तथा 30–40 दिनों की अवस्था पर खुरपी, कुदाली या अन्य कृषि यंत्रों से दो निराई–गुड़ाई अवश्य करें, इससे खरपतवार नियंत्रण के साथ–साथ मृदा में वायु संचार बढ़ने से सोयाबीन की अच्छी वृद्धि एवं उपज में बढ़ोत्तरी होती है, साथ ही नमी संरक्षण भी होता है।

डोरा विधि द्वारा : सोयाबीन की बुवाई यदि 30–45 सेमी. पर की गई है तो कतारों के मध्य 10–15 सेमी. के फाल (ब्लेड) वाले कल्टीवेटर या कुल्फा/डोरा को बैलों/ट्रेक्टर द्वारा चलाकर भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है, परन्तु इसमें यह सावधानी रखनी चाहिए कि पौधों की जड़ों को नुकसान न हो।

रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण : प्रतिकूल मौसम परिस्थितियों जैसे लगातार वर्षा होने से एवं समय पर मजदूरों के न मिलने के कारण कम समय में अधिक क्षेत्र में हाथों से श्रमिक द्वारा खरपतावार नियंत्रण कठिन हो जाता है, ऐसी स्थितियों में, खरपतवारों का रसायनिक नियंत्रण काफी कारगर साबित होता है। रसायनों द्वारा खरपतवारों के नियंत्रण से लागत भी कम आती है, समय की बचत होती है, और सोयाबीन की फसल को हानि नहीं पहुँचती है। खरपतवारनाशक, खरपतवारों को शीघ्र नष्ट कर देते है जिससे उनकी पुनः वृद्धि नही होती है, फूल व बीज नही बनते है तथा उनका प्रसारण नही हो पाता है जिससे अगले वर्ष फसल में खरपतवारों का प्रकोप काफी हद तक कम हो जाता है।

प्रयुक्त किये जाने वाले (अंकुरण पश्चात वाले) खरपतवार नाशक चुनिंदा प्रकार के होते हैं, जो खरपतवारों को भिन्न–भिन्न रसायनिक क्रियाओं द्वारा नष्ट करते हैं तथा फसल को नुकसान नही पहुँचाते है। चूंकि यह खरपतवारनाशक सोयाबीन की खड़ी फसल में प्रयोग किये जाते है, अतः इनके प्रयोग में कुछ विशेष सावधानियां रखनी चाहिये। जैसे विशिष्ट खरपतवारों के लिए विशिष्ट खरपतवारनाशक (तालिका–1) की सही मात्रा, सही समय, सही विधि द्वारा छिड़काव करें अन्यथा फसल पर कभी–कभी प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ सकता है।

सरफेक्टेंट का प्रयोग अवश्य करें : खरीफ के मौसम में खरपतवारों के नियंत्रण हेतु खरपतवारनाशकों का छिड़काव करते समय या 2–3 घंटे बाद बारिश भी आ जाती है और छिड़काव किये गये खरपतवारनाशक की काफी मात्रा पत्तियों से छिटक कर नीचे गिर जाती है और आशातीत परिणाम नही मिलते है। खरीफ में इन सभी से बचने के लिए दवाई चिपकाने व फैलाने वाला पदार्थ 'सरफेक्टेंट' 0.5% यानि करीब 500 मिली लीटर प्रति हैक्टेयर के हिसाब से मिलाकर स्प्रे करने से खरपतवारनाशक, खरपतवारों की सम्पूर्ण पत्तियों पर फैलकर चिपक जाते हैं जिससे यदि 2–3 घंटे बाद बारिश आ भी जाती है तो दवाई का नुकसान काफी कम होता है। अतः सोयाबीन में खरपतवारनाशकों के साथ 'सरफेक्टेंट' मिलाकर छिड़काव करने से खरपतवारों का अच्छा नियंत्रण हो पाता है। स्प्रेयर की टंकी में पहले खरपतवारनाशक मिलाये तथा बाद में सरफेक्टेंट को डालकर स्प्रे करें

तालिका 1: सोयाबीन की खड़ी फसल में खरपतवार नियंत्रण हेतु खरपतवारनाशक (रसायन) तथा उनका विवरण

खरपतवार नाशक का तकनीकी नाम	व्यापारिक नाम	रासायनिक नाम	प्रयुक्त सक्रिय तत्व प्रति है.	प्रयुक्त मात्रा प्रति हैक्टेयर	प्रयोग का प्रकार एवं अवधि	प्रति टंकी (15 ली.) की मात्रा	विशेष विवरण
पेण्डामिथाइलिन	स्टॉम्प	30 प्रतिशत	1.0 किग्रा/है.	3.3 किग्रा/है.	0–3 दिन	100 मि. ली.	संकरी पत्ती व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु (सांवा)
सलफेन्ट्राजोन		58 प्रतिशत	360 ग्राम/है.	750 ग्रा/है.	0–3 दिन	18 मि.ली.	संकरी पत्ती व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु
सलफेन्ट्राजोन +क्लोमाजोन	–	58 प्रतिशत डब्ल्यू. पी.	725 ग्राम/है.	1.25 किग्रा/है.	0–3 दिन	37.5 मि.ली.	–
पेन्डिमेथालिन + इमाजाथाईपर	–	तरल 30 प्रतिशत ई.सी. + तरल 2 प्रतिशत एस.एल.	960 ग्राम/है.	3000 मि.ली./है.	0–3 दिन	90 मि.ली.	सकरी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु
डाईक्लोसूलाम		85 प्रतिशत	26 ग्राम/है.	32 ग्राम/है.	बुवाई पश्चात 0–3 दिन तक	1 ग्राम	सकरी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु
इमाजा थाईपर	परस्यूट	तरल 10: ई.सी.	75–100 ग्राम/है .	750–1000 मि.ली./है.	बुवाई पश्चात पी.ओ.ई. 12–20 दिन बाद	23–30 मिली	सकरी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु
क्लोड़ीनाफोप प्रोपारजिल 8 प्रतिशत+ एसीफ्लोरफेन सोड़ियम 16.5 प्रतिशत		क्लोड़ीनाफोप प्रोपारजिल 8 प्रतिशत+ एसीफ्लोरफेन सोड़ियम 16.5 प्रतिशत	80+165 ग्राम/है.	1000 मिली	बुवाई के 20–25 दिन बाद	30 मिली	सकरी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु

खरपतवारनाशकों के प्रयोग करते समय महत्तवपूर्ण सावधानियां :

1. रसायन छिड़कने वाले किट/मास्क का प्रयोग करें।
2. फ्लेटपेन/फ्लड जेट नोजल लगाकर छिड़काव करें।,
3. उचित समय पर सही मात्रा का प्रयोग करें।
4. छिड़काव हेतु निर्धारित रसायन मात्रा का पानी में घोल बनाकर स्प्रे करें।
5. वायु के विपरीत दिशा में छिड़काव न करें ताकि रसायन शरीर पर न गिरे।
6. छिड़काव के समय बिड़ी, सिगरेट, तम्बाकू या अन्य चीज न खायें व खाली पेट स्प्रे न करें।
7. छिड़काव पूरे खेत में समान रूप से एवं नमीं होने पर करें।
8. छिड़काव पश्चात स्प्रेयर को अच्छी तरह साफ करके रखें।
9. रसायन के डिब्बों को तोड़कर, भूमि में गहरा गाढ़ देवें।
10. यदि हो सके तो छिड़काव रसायन की खरीद रसीद, अन्य जानकारियां जैसे नाम आदि कागज या डायरी में नोट करें।
11. पूर्णरूप से खाली पेट स्प्रे न करें एवं हो सकें तो एक साथी जरूर साथ ले जावें।
12. रसायनों को न सूंघे, न चखें और न ही स्पर्श करें अन्यथा जीवन पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।
13. खरपतवारनाशकों को लकड़ी की सहायता से घोलें और स्प्रे करने वाले के शरीर पर किसी प्रकार का घाव आदि न हो।
14. छिड़काव पश्चात शरीर व कपड़ों को साबुन से अच्छी तरह साफ करें।
15. खरपतवारनाशक छिड़कते समय या बाद में किसी प्रकार का शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव हो तो तुरंत पास के अस्पताल में डॉक्टर को दिखायें।

सोयाबीन फसल के कीटों की पहचान व प्रबंधन

बी. के. पाटीदार, आर. के. महावर, सी. बी. मीणा, डी. एस. मीणा एवं सुशीला कलवानियॉ
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा

आज हमारे देश में तेल व दालों की बढ़ती मांग को देखते हुए सोयाबीन की खेती अत्यंत महत्वपूर्ण है। जहां उन्नत बीज व उर्वरक इसकी पैदावार बढ़ाते है, वहीं कीड़े उसका बहुत बड़ा भाग नष्ट कर देते है। राजस्थान, मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र के बड़े क्षेत्र में सोयाबीन की खेती होती है और हम एक तरह से कह सकते हैं कि राज्यों की प्रमुख चमत्कारिक फसल के रूप में जानी जाती है। इसकी खेती करके हम पौष्टिक आहार तेल, दूध, आदि प्राप्त कर आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते है। इसमें लगभग 40 प्रतिशत प्रोटीन, 20 प्रतिशत तेल एवं औषधीय गुण पाये जाते हैं।

सोयाबीन के प्रमुख कीट व उनका प्रबंधन : सोयाबीन विश्व की एक महत्वपूर्ण तिलहनी फसल है। किन्तु सघन खेती, खाद एवं उर्वरकों का असंतुलित उपयोग, कीटनाशियों का अंधाधुंध प्रयोग तथा लगातार सोयाबीन के बाद सोयाबीन की फसल लेने के कारण कीट व्याधियों की समस्याएं बढ़ी है। वैसे तो सोयाबीन की पैदावार कई कारकों द्वारा प्रभावित होती है जिसमें कीड़े बीमारियां प्रमुख है। कीड़ों के कारण पैदावार में 18 से 90 प्रतिशत तक कमी आंकी गई है। सोयाबीन को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों में गर्डल बीटल, तना, मक्खी एवं सेमी लूपर प्रमुख है। खरीफ 2002 एवं 2005 में तंबाकू लट का हाडौती क्षेत्र में भयंकर प्रकोप देखा जा चुका है। सोयाबीन का पौधा प्रकृति ने इस तरह से बनाया है कि वह कीड़ों को ज्यादा आकर्षित करता है क्योंकि इसका पौधा ज्यादा हरा, मुलायम, नाजुक एवं पौष्टिक तत्वों से भरा होता है, यह सब कीटों की बढ़वार के लिए उपयुक्त है।

1. सोयाबीन की तना मक्खी : इस कीट की मेगट अवस्था ही हानिकारक होती है। इसे स्टेम फ्लाई भी कहते हैं। इसकी इल्ली हल्के पीले रंग की व मक्खी काले चमकीले रंग की होती है। इसका प्रकोप पौधे सह नहीं पाते, मर जाते हैं या दानों की संख्या व वजन कम हो जाता है। वयस्क मक्खी जून से जुलाई माह में अधिक सक्रिय रहती है। इसके ग्रसित तनों को चीरने पर तना खोखला दिखाई देता है मध्य भाग गहरा लाल या भूरे रंग का हो जाता है।नव विकसित मेगट पत्तियों के डठंलों से तने के अंदर घुसती है। ग्रसित पौधों में प्रारंभ में पत्तियों का ऊपरी भाग सूख जाता है।

नियंत्रण : एक ही खेत में लगातार सोयाबीन की फसल न ले। फसल चक्र अपनाने से इस कीट की संख्या में प्रभावी रूप से कमी देखी जा सकती है। थायामिथोक्जाम 30 एफ.एस. 10 मि.ली./कि.ग्रा. की दर से बीज का उपचार करें। फसल उगने के बाद थायामिथेक्जाम+लेम्बडा सायहेलोथ्रिन 125 मि.ली. प्रति है. की दर से छिड़काव करें।

2. गर्डल बीटल (चक्र भृंग) : पहचान : वयस्क कीट नारंगी रंग का होता है, जिसके पंखों का निचला भाग काला होता है। इसकी श्रृंगिकाऐं शरीर की लम्बाई के बराबर एवं पीछे की ओर मुड़ी होती है। इसकी इल्ली पैर विहीन, पीले रंग की एवं शरीर पर उभार लिए होती है। पूर्ण विकसित इल्ली लगभग 2 सेमी. लंबी होती है।

नुकसान : कीट की मादा वयस्क पौधे के शाखा अथवा पर्ण वृत पर (फसल की बढ़वार के अनुसार) 6 से 15 मि.मी. दूरी पर दो चक्र (रिंग) बनाती है। निचले चक्र के समीप एक छिद्र बनाकर पौधे के अंदर एक हल्के पीले रंग का अंडा देती है। दो चक्रों के बीच का भाग खोलने पर यह अंडा स्पष्ट दिखाई देता है। अंडे से निकल कर लट तने के बीच का भाग खाती है जिससे तना खोखला हो जाता है। रोगग्रस्त टहनियां सूख कर लटक जाती है। पूर्ण विकसित इल्ली पौधे को अंदर से काट कर गिरा देती है, जिससे इस भाग में लगी फलियों से किसान वंचित हो जाते है।

नियंत्रण : ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें जिसमें भूमि में सुषुप्तावस्था में पड़ी इल्लियां भूमि की सतह पर आ जाये ओर धूप के कारण नष्ट हो जाये। फसल के शेष अवशेष को जलाकर नष्ट करें ताकि छुपी हुई शंखीयों को नष्ट किया जा सके। रासायनिक नियंत्रण हेतु डायमिथोएट 30 ईसी 1.0 ली. प्रति है. के हिसाब से छिड़काव करें। अत्यधिक प्रकोप होने पर थायोक्लोप्रिड 21.7 एस.सी. 750 मि.ली. प्रति हैक्टर की दर से 400–600 लीटर पानी घोलकर छिड़काव करें।

3. ब्राउन सेमी लूपर (मटमेली अर्द्ध कुण्डलाकार इल्ली) : सेमी लूपर सोयाबीन की फसल में अगस्त से सितम्बर के माह में अधिक आक्रमण करते है। सेमी लूपर पौधों की पतियों को चट कर जाती है जिससे पत्तिया जाली धार हो जाती है तथा पौधों की बढ़वार रुक जाती है जिस कारण से उपज में भारी कमी हो जाती है।

4. ग्रीन सेमीलूपर (हरी अर्द्ध कुण्डलाकार इल्लियॉ) : इस कीट का प्रकोप फसल उगने के 15–20 दिन बाद से ही शुरु हो जाता है, अगस्त–सितम्बर तक रहता हैं। अर्धकुण्डलक हरी इल्लियॉ, सोयाबीन की पत्ती खाने वाली इल्लियों में प्रमुख हैं। ये सभी इल्लियॉ प्रारम्भ में पत्तियों पर बड़े–बड़े अनियमित छेद कर देती हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियों पर शिराएं मात्र ही शेष रह जाती हैं, जिसके पश्चात् इनका आक्रमण कलिकाओं, फूलों एवं नव–विकसित फलियों पर प्रारंभ हो जाता हैं।

नियंत्रण : जैविक नियंत्रण में इल्लियों की शुरूआती अवस्था में बैसिलस थुरिजिंएसिस 1 ली. प्रति हे. के हिसाब से छिड़काव करें। प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. 1.25 लीटर या क्यूनालफॉस 20 ई.सी. 1.5 लीटर प्रति हेक्टर या डाइफ्लूबेन्जुरान 25 डब्ल्यू.पी. 350 ग्राम या इण्डोक्साकार्ब 15.8 ई.सी. 0.3 लीटर या क्लोरएन्ट्रानीलीप्रोल 18.5 एस.सी. 100 मि.ली.प्रति हे. के हिसाब से छिड़काव करें। बायो कीटनाशक (बी. टी.) 127 एस.सी. 3 मि.ली./लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। सोयाबीन में कीटों के प्रकोप के नियंत्रण हेतु क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 1.5 लीटर प्रति हेक्टर आर्थिक दृष्टि से सबसे उपयुक्त हैं।

5. तम्बाकू इल्ली : कीट की सूण्डी फसल का नुकसान पहुंचाती है। नवजात इल्लियाँ समूह में रहकर पत्तियों का पर्ण हरित खुरचकर खाती है जिससे ग्रसित पत्तियाँ जालीदार हो जाती है जो की दूर से ही देख कर पहचानी जा सकती है । पूर्ण विकसित इल्ली पत्ती, कलि एवं फली तक को नुकसान करती है। प्रारंभ में झुण्ड में सूण्डियों एक साथ पत्तियों को काटने व चबाने के मुखांगों से काटकर क्षति पहुंचाती है।

नियंत्रण : फसल कटने के बाद गर्मी में गहरी जुताई करें। प्रकाश पॉश एंव फेरोमान पॉश का प्रयोग करना चाहिए। ताकि वयस्क कीटो को नष्ट किया जा सके। अण्डों के गुच्छों को पत्तियों के सहित तोड़कर नष्ट कर देना चाहिये। कीट की प्रारम्भिक अवस्था में एस.एल.एन.पी.वी. (एस.एल. न्यूक्लियर पोलीहैडोसिस वायरस) 250–400 एल.ई. प्रति है. या क्लोरपायरिफॉस 20 ई.सी. 1.5 लीटर प्रति है. की दर से छिड़काव करना चाहिए। इनडोक्सकर्ब 14.8 एस.एल. 300 मि.ली.या क्लोरेंटरेनीलीप्रोल18.5 एस.सी.100 मि.ली. प्रति हे.के हिसाब से छिड़काव करें।

6. रोएंदार इल्ली (बिहार हेयरी कैटरपिलर): इस कीट की इल्ली सोयाबीन फसल पर अगस्त के अन्तिम सप्ताह से सितम्बर माह के अन्त तक आक्रमण करती हैं। फली लगते समय काली, लाल व भूरे रंग की बालों वाली लटें पत्तियों को खकर छलनी कर देती हैं तथा पत्तियों में नसों का जाल मात्र रह जाता हैं। शुरु में प्रकोप एक–दो स्थान पर केन्द्रित रहता हैं। मादा कीट 500–600 अण्ड़े समूह में देती हैं, अण्ड़ों से लटें निकलकर चारों और फैल कर आकार में बढ़ते हुए पत्तियों को खाती रहती हैं जिसका उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पडता हैं।

नियंत्रण : अण्डों व छोटी इल्लियों के समूह को पत्तियों के सहित तोड़कर नष्ट कर देना चाहिये। प्रकाश पाश का एवं फेरोमोन का प्रयोग करना चाहिए, जिससे वयस्क कीटों को नश्ट किया जा सके। रासायनिक नियंत्रण हेतु क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत डस्ट 20–25 किलो प्रति हैक्टर की दर से भुरकाव करें। क्लोरपायरिफॉस 20 ई.सी. या प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी.1.5 लीटर या फ्लूबेनडाइएमाइड़ 39.35 एस. सी. 180 मि.ली. प्रति है. की दर से छिड़काव करें।

7. रस चूषक कीट : इस श्रेणी में सफेद मक्खी व हरा तैला (जैसिड्स) प्रमुख हैं। वैंसे इनका प्रकोप फसल के पूरे समय रहता है, किन्तु उगने के तीसरे सप्ताह से फलियॉ आने तक अधिक होता है। ये कीट छोटे–छोटे 3 से 5 मिली लीटर लम्बे पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते है, जिसके फलस्वरूप पत्तियॉ पीली पड़कर सूख जाती है, और पैदावार प्रभावित होती है। साथ ही ये कीट विषाणु रोग (वायरस) को फैलाने में भी मदद करते है।

नियंत्रण : सफेद मक्खी के लिये बीजो का उपचार थायोमिथोक्जाम 30 एफ.एस. 10 मि.ली./कि.ग्रा. की दर से करें। खडी फसल में इनकी की रोकथाम हेतु संस्थानिक (सिस्टेमिक) कीटनाशक दवा अधिक उपयोगी रहती है। डायमिथोएट–30 ई.सी. 1.0 ली. या इडिाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिशत 150 मि.ली. या थायोमिथोक्जाम 25 डब्ल्यू.पी. 100 ग्राम प्रति हैक्टर की दर से 400–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार दो सप्ताह पश्चात् छिड़काव पुनः दोहरावें।

❋❋❋

उड़द उत्पादन : उन्नत तकनीक एवं प्रबंधन

नरेन्द्र पादड़ा, खुशवन्त बी. चौधरी, शुभम शर्मा और सुमन कुमार
भा.कृ.अनुप. केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

भारतीय कृषि व्यवस्था में दलहनी फसलों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। ये फसलें न केवल मानव आहार में प्रोटीन का प्रमुख स्रोत हैं, बल्कि मृदा स्वास्थ्य सुधारने एवं टिकाऊ कृषि प्रणाली को बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारत विश्व का प्रमुख दलहन उत्पादक देश है, जहाँ विश्व के कुल दलहन क्षेत्रफल का लगभग 31 प्रतिशत तथा उत्पादन का लगभग 22 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। इसके बावजूद देश की विशाल जनसंख्या एवं बढ़ती पोषण आवश्यकताओं के कारण भारत आज भी विश्व का सबसे बड़ा दलहन आयातक देश बना हुआ है। वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, कुपोषण की समस्या तथा कृषि भूमि की घटती उर्वरता को देखते हुए दलहनी फसलों का उत्पादन बढ़ाना अत्यंत आवश्यक हो गया है। वैज्ञानिक खेती तकनीकों, उन्नत किस्मों एवं गुणवत्तायुक्त बीजों के उपयोग द्वारा दलहन उत्पादन में वृद्धि कर देश की पोषण एवं खाद्य सुरक्षा को मजबूत बनाया जा सकता है।

उड़द एक दलहनी फसल होने के कारण भूमि में नाइट्रोजन का स्थरीकरण करती है और आगामी फसल के लिए मृदा में नाइट्रोजन छोड़ती है। इनकी जड़ों में उपस्थित राइजोबियम जीवाणु नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया द्वारा भूमि को अधिक उपजाऊ बनाते हैं, जिससे अगली फसलों को भी लाभ मिलता है।

उड़द में लगभग 20 25 प्रतिशत उच्च गुणवत्ता वाला प्रोटीन पाया जाता है। फलियों की तुड़ाई के बाद इसके पौधों को खेत में पलटकर हरी खाद के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि होती है।

जलवायु :
उड़द की फसल को अधिक तापमान, कम नमी और मध्यम वर्षा (60–80 से.मी.) वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगायी जाती है। इसके अच्छे अंकुरण के लिये 20–25 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा बढवार व फली बनने हेतु 25–30 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। उड़द मुख्य रुप से खरीफ व जायद मौसम में उगाई जाने वाली दलहनी फसल है इसमे सूखा सहन करने की क्षमता अधिक होती है। जल भराव और भारी वर्षा फसल पकाव के समय काफी नुकसान पहुंचाती है।

भूमि का चुनाव एवं तैयारी :
उड़द की खेती हेतु हल्की से दोमट क्षार रहित एवं मृदा का पी.च. मान 6.5–7.5 अधिक उपयुक्त रहती है तथा अधिक अम्लीय एवं ऊसर मृदायें अनुपयुक्त पाई गई है। उड़द की फसल को सामान्यतः बहुत अच्छे खेत तैयार की आवश्यकता नही होती है। उड़द के लिए वर्षा होने पर खेत को एक या दो बार आवश्यकतानुसार जोत कर तैयार करना चाहिए तथा पाटा लगने से खेत तैयार हो जाता है। भूमिगत कीडों एवं दीमक की रोकथाम के लिए बुवाई से पूर्व भूमि उपचार करना आवश्यक है।

उन्नत किस्में :
उड़द की अधिक उत्पादन लेने हेतु सदैव उन्नत किस्म के बीजों को ही बुवाई के लिये काम में लेना चाहिए। किस्मों का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना अति आवश्यक है कि अधिक उत्पादन के साथ–साथ ये किस्में रोग प्रतिरोधी तथा उस क्षेत्र की जलवायु के लिय प्रयुक्त हो।

प्रताप उड़द–1 : यह किस्म मध्यम अवधि में पकती है तथा विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में अच्छी उपज देती है। इसके दाने चमकदार एवं बाजार में पसंद किए जाते हैं। इसकी औसत उपज लगभग 10–12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त होती है।

मुकन्दरा उड़द–2 : यह किस्म उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इसकी फसल लगभग 75–80 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। यह खरीफ एवं ग्रीष्म ऋतु दोनों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। इसके पौधे मध्यम ऊँचाई वाले होते हैं तथा दानों की गुणवत्ता अच्छी होती है। इसकी औसत उपज लगभग 10–12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।

कोटा उड़द–3 : इसका विकास दक्षिण–पूर्वी राजस्थान की जलवायु परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया गया है। यह किस्म अच्छी उत्पादन क्षमता एवं बेहतर अनुकूलन क्षमता के लिए जानी जाती है। इसके पौधे मजबूत होते हैं तथा फलियों की संख्या अधिक होती है। इसकी औसत उपज लगभग 12–14 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है।

कोटा उड़द–4 : यह लगभग 75–80 दिनों में तैयार हो जाती है तथा उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है। यह किस्म पीला मोजेक वायरस के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है। इसके दाने आकर्षक एवं अच्छी गुणवत्ता वाले होते हैं। इसकी औसत उपज लगभग 12–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त होती है।

कोटा उड़द–5: यह किस्म अधिक उत्पादन क्षमता एवं बेहतर क्षेत्रीय अनुकूलता के लिए विकसित की गई है। इसके पौधे मध्यम आकार के होते हैं तथा फलियाँ अधिक संख्या में लगती हैं। यह किस्म राजस्थान एवं आसपास के क्षेत्रों में अच्छी पैदावार देने की क्षमता रखती है। इसकी औसत उपज लगभग 13–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक हो सकती है।

कोटा उड़द–6 : यह किस्म आधुनिक वैज्ञानिक खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है तथा इसकी औसत उपज लगभग 14–16 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।

पी.यू.–31 : उड़द की एक अत्यंत लोकप्रिय उन्नत किस्म है, जो पीला मोजेक रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए प्रसिद्ध है। यह लगभग 70–75 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसके पौधे मध्यम ऊँचाई वाले होते हैं तथा यह अधिक उपज देने वाली किस्म मानी जाती है। यह खरीफ एवं ग्रीष्म दोनों मौसमों के लिए उपयुक्त है। इसकी औसत उपज लगभग 10–16 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त होती है।

बुवाई का समय :
जुलाई का प्रथम पखवाड़ा उड़द की बुवाई के लिए सबसे उपयुक्त है। बुवाई मानसून की वर्षा के साथ ही या वर्षा देरी से हो तो 30 जुलाई तक भी की जा सकती है। गर्मी में बोये जाने वाले उड़द की बुवाई मार्च के प्रथम सप्ताह से अन्तिम सप्ताह तक अवश्य कर देनी चाहिए।

बीज दर :
सामान्यतः खरीफ मौसम में उड़द की बुवाई के लिए 15–20 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त माना जाता है, जबकि जायद मौसम में 20–25 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। यदि बुवाई छिटकवाँ विधि से की जाती है, तो पौध संख्या बनाए रखने हेतु बीज दर बढ़ाकर लगभग 25–30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर रखी जाती है। कतारों के बीच की दूरी 30 सेंटीमीटर और पौधे से पौधे की दूरी 8–10 सेंटीमीटर रखें।

बीजोपचार :
बीज को 3 ग्राम थाईरम या 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम (50 डब्ल्यू पी) प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। बीजों को सदैव राइजोबियम एवं फॉस्फोरस घोलक जीवाणु (पी.एस.बी.) का 600 ग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से उपचारित कर बुवाई करें। उड़द में रस चूसक कीटों की रोकथाम के लिए बीज को 5 मि.ली. इमिडाक्लोप्रिड 48% एफ. एस. प्रति किलो बीज से उपचारित करें। तत्पश्चात् बीजो को राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें।

खाद व उर्वरक प्रबंधन :
उड़द दलहनी फसल होने के कारण प्रारम्भ की अवस्था में प्रति हेक्टेयर नत्रजन 20 किलो व फॉस्फोरस 30–40 किलों बुवाई से पहले उर कर देवें। पोटाश एवं जस्ता मृदा परीक्षण के आधार पर दें। मिट्टी की जॉच के अनुसार गंधक की कमी वाली भूमि में प्रतिवर्ष 250 किलोग्राम जिप्सम या 20 किलोग्राम सल्फर प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय भूमि में (गंधक उर्वरक के रुप) देने से उपज में वृद्वि होती है। जस्ते की कमी वाली मृदाओं में 20–25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय भूमि में डाले या खडी फसल में 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 0.25 प्रतिशत चूने के घोल का छिडकाव करने से उपज में वृद्वि होती है।

सिंचाई प्रबंधन :
जायद उड़द की फसल को 4–5 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। बुवाई के बाद पहली सिंचाई 18–20 दिनों पर, दूसरी सिंचाई 30–35 दिनों पर और आवश्यकता पड़ने पर 42 से 48 दिनों पर तीसरी सिंचाई कर देनी चाहिए। वर्षा ऋतु की फसल में भी अगर समय पर वर्षा न हो तो दो सिंचाईयां करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण :
उत्पादकता में कमी को रोकने हेतु उड़द को खरपतवारों से मुक्त रखना आवश्यक है। फसल को 25–40 दिन की अवस्था तक दो बार खुरपी से निराई–गुडाई करके खरपतवारों से मुक्त रखें। रासायनिक नियंत्रण के लिए बुवाई के बाद तथा अंकुरण के पूर्व पेंडिमिथेलीन 0.75 कि.ग्रा. या एलाक्लोर 50 ईसी. 1.0 लीटर (सक्रिय अवयव) प्रति हैक्टेयर की दर से 500–700 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। अंकुरण के बाद इमॉजिथापर खरपतवार नाशी का 50 ग्राम अथवा इमॉजिथापर इमेजामॉक्स (प्री–मिक्स) खरपतवार नाशी का 60 ग्राम अथवा सोडियम एसीफ्लुरफेन 16.5 प्रतिशत. क्लोडिनाफोप प्रोपार्जिल 8 प्रतिशत खरपतवार नाशी का 187.5 ग्राम प्रति हेक्टेयर के हिसाब से पानी में घोलकर छिड़काव करें।

फसल संरक्षण :
उत्पादकता बढाने के लिये फसलों का जैविक एवं अजैविक कारकों से बचाव अत्यन्त आवश्यक है। समेकित रोग व कीट प्रबन्धन जिसमें रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का प्रयोग, स्वस्थ बीजों का प्रयोग, कवकनाशी तथा जैवनाशी तत्वों का प्रयोग कर उत्पादकता को स्थिर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है।

प्रमुख रोग एवं उनका नियंत्रण :
पीला चित्रवर्ण या पीला मोजेक रोग : शुरुआती लक्षण में पीले छोटे धब्बे नयी पत्ती पर फैले हुये दिखाई देते है बिमारी फैलने पर ये धब्बे बड़े आकार के होकर पूरी पत्ती को पीला कर देते है। पौधों की बढ़वार रूक जाती है। फूल एवं फली की संख्या कम हो जाती है फली आकार में छोटी एवं पीला रंग लिये हुये होती है।

नियंत्रण : यह बीमारी सफेद मक्खी द्वारा फैलती है इसे रोकने हेतु कीटनाशी दवा जैसे डायमिथोएट 30 ई. सी. एक लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार 15 दिन के अन्तराल पर फिर छिड़काव करें।

पत्ती मोड़न : इसके लक्षण सामान्यतः फसल बोने के 3 से 4 सप्ताह में दिखने लगते हैं। इस रोग में दूसरी पत्ती बड़ी होने लगती है, पत्तियों में झुर्रियां व मरोड़पन आने लगता है। संक्रमित पौधों को खेत में दूर से ही देखकर ही पहचाना जा सकता है। इस रोग के कारण पौधे का विकास रुक जाता है, जिससे पौधे में नाम मात्र की फलियां आती हैं। यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में अपनी चपेट में ले सकता है।

नियंत्रण : यह विषाणु जनित रोग है जिसका संचरण कार्य थ्रिप्स द्वारा होता है। थ्रिप्स के लिये एक ग्राम एसीफेट या 2 मिली लीटर डाइमेथोएट प्रति लीटर के हिसाब से छिड़काव करें। फसलों की समय पर बुवाई करें।

जीवाणु चित्ती रोग : पत्ती की सतह पर बहुत सारे भूरे रंग के सूखे हुये धब्बे दिखाई पड़ते है। प्रकोप बढ़ने पर ये धब्बे पूरी पत्ती पर फैल जाते है।

पत्ती की निचली सतह पर देखने पर ये धब्बे लाल रंग लिये होते है। इसका प्रभाव तने एवं फलियों पर भी देखा जा सकता है।

नियंत्रण : एग्रीमाईसीन 200 ग्राम या दो किलोग्राम ताम्रयुक्त फफूंदनाशी या प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें आवश्यकतानुसार छिड़काव दोहरावें।

प्रमुख कीट एवं निदान :

उड़द फसल के प्रमुख कीट सफेद मक्खी, थ्रिप्स, फली छेदक, आदि है। सफेद मक्खी : वयस्क सफेद मक्खी व इनके निम्फ पत्ती की सतह से रस को चुसकर पौधे को कमजोर कर देते है। प्रभावित पौधे मुरझाकर नीचे झुकने लगते हैं। कई बार पूरा पौधा ही मर जाता है। ये कीट पत्तियों पर एक चिपचिपे पदार्थ का श्रावण करते है जिस पर काले रंग के फफूंद जमा हो जाने के कारण प्रकाश संश्लेषण क्रिया की दर में कमी आ जाती है। सफेद मक्खी विभिन्न विषाणु रोगों का वाहक है जिसमें येलो मोजेक विषाणु प्रमुख है।

थ्रिप्स : इसके निम्फ तथा वयस्क कीट दोनों ही पुष्प के अन्दर कलंगी पर नुकसान करते है। थ्रिप्स के प्रकोप से पुष्प खिलने से पहले गिरने लगते है। ज्यादा प्रकोप होने पर पौधा झाड़ीनुमा हो जाता है एवं फलियां बहुत कम बनती है।

फली छेदक : यह कीट उड़द सहित बहुत सी फसलों का एक मुख्य हानिकारक कीट है। इसकी सूंडी पौधे की पत्तियों पर गोल छेद कर देती है। बाद में फूलों एवं फलियों को खाकर नुकसान पहुचाती है। इसकी लट का आधा भाग फली के अन्दर तथा आधा फली के बाहर रहता है तथा इसी प्रकार बीज को खाती रहती है।

समेकित कीट प्रबंधन : गर्मियों में भूमि की गहरी जुताई करनी चाहिए जिससे भूमि के अन्दर उपस्थित कीटों के कोषकों को नष्ट किया जा सके। कीट प्रतिरोधी प्रजातियों के बीजों के साथ समय से बुवाई करनी चाहिए। उपयुक्त फसल चक्र के साथ ही खेती करनी चाहिए। कीट की उपस्थिति की जानकारी के लिए पांच फेरोमोन ट्रैप लगाने चाहिए। रात के समय खेतों में प्रकाश प्रपंच लगाकर वयस्क कीटों को आसानी से आकर्षित कर नष्ट किया जा सकता है कीट के अंडो वाली पत्तियों को इकट्ठा कर तथा समूह में उपस्थित नवजनित सूंडियों से प्रभावित पौधों को उखाड़कर जमीन में दबा देना चाहिए। मित्र कीटों जैसे–टीलेनोमस रेमस, ट्राइकोग्रामा, अपेन्टेलिस व अन्य मित्र कीटों के संरक्षण हेतु फसल के साथ अंत: फसल लेनी चाहिए। टी आकार की खुटियाँ कीटभक्षी पक्षियों के बैठने के लिए 20/हे. की दर से लगानी चाहिए जिससे कीटभक्षी पक्षी कीट की सूंडी को खाकर नष्ट कर सकें।

कटाई व मड़ाई :

उड़द की फसल अधिक पक जाने पर या सूख जाने पर फलियां झडने लगती है जिससे उपज में काफी नुकसान उठाना पडता है। फलियों के झड़कर गिरने से होने वाली हानि को रोकने के लिये फलियों को पूरी तरह पकने के बाद एवं झडने से पहले काट लेवे। फसल को 7.10 दिन तक खलिहान में भली–भाँति सुखाकर व गहाई कर दाना निकालना चाहिए।

उपज :

उन्नत कृषि विधियाँ अपनाकर उड़द की उपज लगभग 10–12 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है। दानों को अच्छी तरह धूप में सुखाने के उपरान्त ही जब उनमें नमी की मात्रा 8–10 प्रतिशत रहे तभी भण्डारण करें।

उड़द उत्पादन बढ़ाने के प्रभावी सुझाव :

- उच्च उपज एवं रोग प्रतिरोधी प्रमाणित किस्मों के बीज का चयन करें।
- खरीफ में जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम पखवाड़े तक समय पर बुवाई करें।
- बीज को कार्बेन्डाजिम/थायरम तथा राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें।
- बुवाई के समय संतुलित मात्रा में नत्रजन एवं फास्फोरस उर्वरक दें।
- बुवाई के 20–25 दिन बाद निराई–गुड़ाई कर खरपतवार नियंत्रण करें।
- कीट एवं रोगों का समय पर नियंत्रण तथा फूल अवस्था में पर्याप्त नमी बनाए रखें।

❋❋❋

सतत कृषि एवं उन्नत उत्पादन प्रणाली

पूनम फौजदार, खजान सिंह, पी. के. पी. मीना एवं मंजू मीना
कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा

भारत कृषि प्रधान देश है जहाँ सभी फसलें कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ की हड्डी मानी जाती हैं और यहाँ की लगभग आधी आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। भारत की कृषि व्यवस्था में खरीफ फसलें देश की खाद्य सुरक्षा, पोषण सुरक्षा तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आधारशिला हैं। धान, मक्का, बाजरा, सोयाबीन, मूंगफली, कपास, अरहर तथा अन्य दलहनी एवं तिलहनी फसलें खरीफ मौसम की प्रमुख फसलें हैं, जिनका उत्पादन मुख्यतः मानसूनी वर्षा पर निर्भर करता है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा, बढते तापमान, भूमि की उर्वरता में कमी तथा कीट–रोगों के बढते प्रकोप ने खरीफ कृषि के सामने नई चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं। ऐसे में "सतत कृषि एवं उन्नत उत्पादन प्रणाली" की अवधारणा किसानों के लिए भविष्य का मार्गदर्शन प्रदान करती है।

खरीफ कृषि का वर्तमान परिदृश्य

भारत विश्व के सबसे बडे कृषि प्रधान देशों में से एक है, जहाँ खरीफ फसलें कुल खाद्यान्न उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। परंतु हाल के वर्षो में मानसून की अनिश्चितता, सूखा, बाढ, अत्यधिक तापमान, नई कीट एवं रोग समस्याएँ, भूमि की उर्वरता में गिरावट, कृषि लागत में निरंतर वृद्धि, रासायनिक खेती पर अत्यधिक निर्भरता तथा जल संसाधनों का क्षरण ने उत्पादन स्थिरता को प्रभावित किया है। विशेष रूप से वर्षा आधारित क्षेत्रों में किसानों को अधिक जोखिम का सामना करना पड रहा है। राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारत के अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में वर्षा की कमी और जल संकट खरीफ उत्पादन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहे हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद तथा विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा विकसित उन्नत एवं जलवायु सहनशील किस्में किसानों के लिए आशा की नई किरण बन रही हैं। हाल ही में उच्च उत्पादकता वाली, सूखा एवं ताप–सहनशील तथा जैव–संवर्धित किस्मों के विकास ने खरीफ कृषि को नई दिशा प्रदान की है।

सतत कृषि : भविष्य की आवश्यकता

सतत कृषि ऐसी कृषि प्रणाली है जिसमें वर्तमान पीढी की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य अधिक उत्पादन के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण, मिट्टी स्वास्थ्य एवं जल संरक्षण सुनिश्चित करना है।

सतत कृषि के मुख्य उद्देश्य

- प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण
- मृदा स्वास्थ्य का सुधार
- जल उपयोग दक्षता बढाना
- जैव विविधता का संरक्षण
- पर्यावरण प्रदूषण कम करना
- किसानों की आय में स्थिर वृद्धि
- पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करना

खरीफ फसलों के लिए उन्नत उत्पादन प्रणाली

उन्नत उत्पादन प्रणाली का अर्थ–वैज्ञानिक अनुसंधान, आधुनिक मशीनरी, डिजिटल तकनीक, उन्नत बीज एवं सटीक कृषि प्रबंधन के माध्यम से अधिक एवं गुणवत्तापूर्ण उत्पादन प्राप्त करना।

1. उन्नत एवं जलवायु अनुकूल किस्मों का चयन

वर्तमान समय में ऐसी किस्मों का विकास किया जा रहा है जो–

- सूखा सहनशील हों
- अधिक तापमान सहन कर सकें
- रोग एवं कीट प्रतिरोधी हों
- कम अवधि में तैयार हों
- उच्च उत्पादन क्षमता वाली हों

क्रमांक	फसल	उन्नत किस्में	विशेषताएँ
1.	धान	पूसा बासमती, साहभागी धान	सूखा सहनशील, उच्च गुणवत्ता
2.	मक्का	एच.क्यू.पी.एम.–1, विवेक मक्का	अधिक उत्पादन एवं पोषण
3.	सोयाबीन	जे.एस.–95–60, एन.आर.सी.–37	रोग प्रतिरोधी
4.	बाजरा	एच.एच.बी.–67 सुधारित	कम वर्षा में सफल
5.	अरहर	पूसा–992, आई.सी.पी.एल. श्रृंखला	जल्दी पकने वाली

2. मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन

मृदा कृषि उत्पादन का आधार है। लगातार रासायनिक उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग से मिट्टी की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। इसलिए प्राकृतिक खेती, जैविक खाद, जैव उर्वरक तथा एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन की महत्ता बढ रही है। यह पद्धति पर्यावरण संरक्षण के साथ–साथ उत्पादन लागत को भी कम करती है। इसलिए अब संतुलित पोषण प्रबंधन पर जोर दिया जा रहा है।

मृदा स्वास्थ्य सुधार के उपाय

- मृदा परीक्षण आधारित उर्वरक उपयोग
- जैविक खाद एवं वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग

- हरी खाद का उपयोग
- फसल अवशेष प्रबंधन
- सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग
- जैव उर्वरकों का प्रयोग

जैव उर्वरकों का महत्व
- नाइट्रोजन स्थिरीकरण
- फास्फोरस घुलनशीलता बढाना
- मृदा सूक्ष्मजीव गतिविधि में वृद्धि
- उत्पादन लागत कम करना

3. जल प्रबंधन एवं सूक्ष्म सिंचाई तकनीक

जल संकट भविष्य की सबसे बडी कृषि चुनौती है जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा की अनिश्चितता बढ रही है। ऐसे में जल संरक्षण आधारित कृषि अत्यंत आवश्यक हो गई है। खरीफ फसलों में वर्षा जल संचयन, ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकलर प्रणाली तथा खेत तालाब जैसी तकनीकें अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। राजस्थान जैसे अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में वर्षा जल संचयन से किसानों की आय एवं उत्पादकता में उल्लेखनीय सुधार देखा गया है। इन तकनीकों से जल उपयोग दक्षता बढती है तथा उत्पादन लागत कम होती है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के कृषि परामर्शों में वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए जल संचयन को विशेष महत्व दिया गया है।

आधुनिक जल प्रबंधन तकनीकें
- ड्रिप सिंचाई
- स्प्रिंकलर सिंचाई
- रेन वाटर हार्वेस्टिंग
- खेत तालाब निर्माण
- मल्चिंग तकनीक
- लेजर लैंड लेवलिंग

लाभ
- 40-60% तक जल की बचत
- उर्वरकों की दक्षता में वृद्धि
- खरपतवार नियंत्रण
- उत्पादन में वृद्धि

4. समेकित कीट, रोग एवं पोषक तत्व प्रबंधन

समेकित कीट, रोग एवं पोषक तत्व प्रबंधन आधुनिक सतत कृषि की एक वैज्ञानिक, पर्यावरण–अनुकूल एवं अत्यंत प्रभावी प्रणाली है, जिसका उद्देश्य फसलों को कीटों, रोगों एवं पोषक तत्वों की कमी से सुरक्षित रखते हुए अधिक एवं गुणवत्तापूर्ण उत्पादन प्राप्त करना है। खरीफ मौसम में अधिक तापमान, नमी एवं अनियमित वर्षा के कारण विभिन्न कीट एवं रोग तेजी से फैलते हैं, जिससे उत्पादन एवं किसानों की आय पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। ऐसी परिस्थितियों में केवल रासायनिक उपायों पर निर्भर रहना न तो आर्थिक रूप से लाभकारी है और न ही पर्यावरण के लिए सुरक्षित। समेकित प्रबंधन प्रणाली में प्रतिरोधी किस्मों का चयन, बीज उपचार, फसल चक्र, संतुलित उर्वरक उपयोग, जैव उर्वरकों एवं जैविक कीटनाशकों का प्रयोग, फेरोमोन ट्रैप, प्रकाश प्रपंच तथा प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण जैसे उपायों का समन्वित उपयोग किया जाता है। यह प्रणाली मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने, रासायनिक अवशेषों को कम करने, जल एवं पर्यावरण संरक्षण तथा उत्पादन लागत घटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। साथ ही, समेकित पोषक तत्व प्रबंधन द्वारा रासायनिक, जैविक एवं प्राकृतिक स्रोतों से संतुलित पोषण उपलब्ध कराकर मिट्टी की उर्वरता एवं फसल की प्रतिरोधक क्षमता बढाई जाती है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन एवं प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण को देखते हुए यह तकनीक भविष्य की टिकाऊ कृषि का आधार बनती जा रही है। आधुनिक डिजिटल तकनीकों, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ड्रोन एवं मौसम आधारित कृषि सलाह के समावेश से समेकित प्रबंधन प्रणाली और अधिक प्रभावशाली एवं किसान हितैषी बन रही है, जिससे खरीफ कृषि को लाभकारी, सुरक्षित एवं दीर्घकालीन रूप से टिकाऊ बनाया जा सकता है।

लाभ
- मिट्टी की उर्वरता में सुधार
- दीर्घकालीन उत्पादन स्थिरता
- पर्यावरण संरक्षण
- रासायनिक अवशेषों में कमी
- उत्पादन लागत कम
- पर्यावरण संरक्षण

5. डिजिटल एवं स्मार्ट कृषि तकनीक

डिजिटल एवं स्मार्ट कृषि तकनीक आधुनिक कृषि विकास की नई दिशा है, जो पारंपरिक खेती को वैज्ञानिक, सटीक, लाभकारी एवं टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों की कमी, बढती उत्पादन लागत एवं श्रमिक संकट जैसी चुनौतियों के बीच डिजिटल तकनीकों का उपयोग किसानों के लिए वरदान सिद्ध हो रहा है। स्मार्ट कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता, इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT), ड्रोन तकनीक, सेंसर आधारित निगरानी, उपग्रह चित्रण, मोबाइल कृषि ऐप्स, जीआईएस एवं रिमोट सेंसिंग जैसी आधुनिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जिससे खेत की वास्तविक स्थिति का सटीक आकलन संभव हो पाता है। ड्रोन के माध्यम से उर्वरकों एवं कीटनाशकों का समान एवं नियंत्रित छिड़काव किया जा रहा है, जिससे समय, श्रम एवं लागत की बचत होती है तथा पर्यावरण प्रदूषण भी कम होता है। सेंसर आधारित स्मार्ट सिंचाई प्रणाली मिट्टी की नमी के अनुसार पानी उपलब्ध कराकर जल संरक्षण को बढावा देती है। वहीं मोबाइल एप्लीकेशन एवं डिजिटल प्लेटफॉर्म किसानों को मौसम पूर्वानुमान, बाजार भाव, फसल सुरक्षा एवं वैज्ञानिक सलाह तुरंत उपलब्ध कराते हैं, जिससे सही समय पर सही निर्णय लेना आसान हो जाता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित रोग एवं कीट पहचान प्रणाली प्रारंभिक अवस्था में समस्याओं की पहचान कर उत्पादन हानि को कम करने में सहायक बन रही है। डिजिटल कृषि तकनीक न केवल उत्पादन एवं गुणवत्ता बढाने में सहायक है, बल्कि यह संसाधनों के संतुलित उपयोग, मृदा एवं जल संरक्षण तथा सतत कृषि विकास की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। भविष्य में

स्मार्ट मशीनरी, रोबोटिक्स एवं डेटा आधारित कृषि प्रबंधन के विस्तार से कृषि क्षेत्र अधिक आधुनिक, आत्मनिर्भर एवं किसान हितैषी बनने की अपार संभावनाएँ हैं।

6. फसल विविधीकरण एवं मिश्रित कृषि प्रणाली

फसल विविधीकरण एवं मिश्रित कृषि प्रणाली आधुनिक सतत कृषि का एक महत्वपूर्ण एवं दूरदर्शी मॉडल है, जो किसानों की आय बढाने, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण तथा कृषि जोखिम को कम करने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो रहा है। पारंपरिक रूप से एक ही फसल पर निर्भर रहने से जलवायु परिवर्तन, बाजार मूल्य में उतार–चढाव, कीट एवं रोग प्रकोप तथा प्राकृतिक आपदाओं के कारण किसानों को भारी आर्थिक नुकसान उठाना पडता है। ऐसी परिस्थितियों में फसल विविधीकरण अर्थात विभिन्न प्रकार की फसलों का वैज्ञानिक ढंग से चयन एवं उत्पादन किसानों के लिए सुरक्षा कवच का कार्य करता है। इस प्रणाली में अनाज, दलहन, तिलहन, चारा फसलें, बागवानी एवं नकदी फसलों को संतुलित रूप से अपनाया जाता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है तथा पोषण सुरक्षा भी सुनिश्चित होती है। वहीं मिश्रित कृषि प्रणाली में फसल उत्पादन के साथ पशुपालन, डेयरी, मत्स्य पालन, बकरी पालन, मधुमक्खी पालन एवं कृषि वानिकी जैसी गतिविधियों को सम्मिलित किया जाता है, जिससे आय के अनेक स्रोत विकसित होते हैं और वर्षभर रोजगार उपलब्ध रहता है। दलहनी फसलें भूमि में नाइट्रोजन स्थिरीकरण कर मिट्टी की गुणवत्ता सुधारती हैं, जबकि बहुफसली एवं अंतरवर्तीय खेती कीट एवं रोग प्रकोप को कम करने में सहायक होती है। यह प्रणाली जल, भूमि एवं जैव विविधता संरक्षण के साथ–साथ उत्पादन लागत कम करने एवं पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वर्तमान समय में जलवायु स्मार्ट कृषि, जैविक खेती एवं प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के संदर्भ में फसल विविधीकरण एवं मिश्रित कृषि प्रणाली को कृषि विकास की भविष्य उन्मुख एवं किसान हितैषी रणनीति माना जा रहा है। आधुनिक तकनीकों, बाजार आधारित उत्पादन एवं मूल्य संवर्धन के समन्वय से यह प्रणाली किसानों को आत्मनिर्भर, आर्थिक रूप से सशक्त एवं कृषि को अधिक लाभकारी एवं टिकाऊ बनाने की दिशा में नई संभावनाएँ प्रदान कर रही है।

7. संरक्षित कृषि प्रणाली

संरक्षित कृषि प्रणाली आधुनिक कृषि की एक उन्नत, वैज्ञानिक एवं उच्च तकनीक आधारित पद्धति है, जिसमें फसलों को प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों, कीटों, रोगों एवं प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षित रखते हुए नियंत्रित वातावरण में उत्पादन किया जाता है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा, अत्यधिक तापमान, जल संकट एवं घटती कृषि भूमि जैसी चुनौतियों के कारण संरक्षित कृषि का महत्व तेजी से बढ रहा है। इस प्रणाली के अंतर्गत पॉलीहाउस, ग्रीनहाउस, शेडनेट हाउस, लो–टनल, मल्चिंग एवं ड्रिप सिंचाई जैसी तकनीकों का उपयोग करके तापमान, आर्द्रता, प्रकाश एवं जल प्रबंधन को नियंत्रित किया जाता है, जिससे फसलों की वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण तैयार होता है। संरक्षित कृषि विशेष रूप से सब्जियों, फूलों, औषधीय पौधों एवं उच्च मूल्य वाली फसलों के उत्पादन में अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो रही है। इस तकनीक द्वारा कम भूमि एवं कम जल में अधिक एवं गुणवत्तायुक्त उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है, साथ ही वर्षभर खेती संभव होने से किसानों की आय में वृद्धि होती है। ड्रिप एवं फर्टिगेशन तकनीक के माध्यम से पौधों को आवश्यक पोषक तत्व नियंत्रित मात्रा में उपलब्ध कराए जाते हैं, जिससे जल एवं उर्वरकों की बचत होती है तथा उत्पादन लागत कम होती है। संरक्षित ढाँचों के कारण कीट एवं रोग प्रकोप भी अपेक्षाकृत कम होता है, जिससे रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग घटता है और सुरक्षित एवं अवशेष मुक्त उत्पादन प्राप्त होता है। वर्तमान में डिजिटल सेंसर, स्वचालित सिंचाई प्रणाली, कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं स्मार्ट मॉनिटरिंग तकनीकों के समावेश से संरक्षित कृषि और अधिक आधुनिक एवं प्रभावशाली बनती जा रही है। भविष्य में बढती जनसंख्या, पोषण सुरक्षा एवं उच्च गुणवत्ता वाले कृषि उत्पादों की मांग को देखते हुए संरक्षित कृषि प्रणाली को कृषि क्षेत्र की एक क्रांतिकारी एवं भविष्य उन्मुख तकनीक माना जा रहा है, जो किसानों को अधिक लाभ, संसाधनों का संरक्षण एवं टिकाऊ षि विकास की दिशा में नई संभावनाएँ प्रदान करती है।

भविष्य की संभावनाएँ

भविष्य में कृषि विज्ञान, तकनीक एवं पर्यावरणीय संतुलन का अद्‌भुत समन्वय होगी। आगामी वर्षो में AI आधारित स्मार्ट खेती, ड्रोन तकनीक, सेंसर एवं रोबोटिक मशीनों के माध्यम से खेती अधिक सटीक, तेज एवं लाभकारी बनेगी। किसान मोबाइल एवं डिजिटल प्लेटफॉर्म की सहायता से मौसम, बाजार एवं फसल प्रबंधन संबंधी निर्णय तुरंत ले सकेंगे। जीन संपादित एवं जलवायु–सहनशील फसल किस्में सूखा, अधिक तापमान एवं रोगों जैसी चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होंगी, जिससे उत्पादन स्थिरता एवं खाद्य सुरक्षा को मजबूती मिलेगी। इसके साथ ही, बाजरा, ज्वार एवं अन्य मिलेट्स आधारित कृषि प्रणाली कम पानी एवं कम लागत में अधिक पोषणयुक्त उत्पादन देकर भविष्य की सतत कृषि का आधार बनेगी। कार्बन–स्मार्ट एवं पर्यावरण अनुकूल कृषि तकनीकों के माध्यम से मिट्टी की उर्वरता संरक्षण, जल बचत एवं ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी संभव होगी। भविष्य की खेती "डेटा आधारित सटीक कृषि" के रूप में विकसित होगी, जहाँ प्रत्येक खेत की आवश्यकता के अनुसार उर्वरक, सिंचाई एवं पोषण प्रबंधन किया जाएगा। इस प्रकार आधुनिक कृषि तकनीकें न केवल किसानों की आय बढाएँगी, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित, समृद्ध एवं टिकाऊ कृषि व्यवस्था भी सुनिश्चित करेंगी।

निष्कर्ष

खरीफ कृषि भारत की खाद्य एवं आर्थिक सुरक्षा का मजबूत आधार है। वर्तमान समय में कृषि केवल उत्पादन तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि यह विज्ञान, तकनीक, पर्यावरण संरक्षण एवं नवाचार का समन्वित रूप बन चुकी है। यदि किसान वैज्ञानिक तकनीकों, जल संरक्षण, उन्नत किस्मों, डिजिटल कृषि एवं प्राकृतिक खेती को अपनाएँ, तो खरीफ कृषि भविष्य में अधिक लाभकारी, टिकाऊ एवं पर्यावरण अनुकूल बन सकती है। आज आवश्यकता है "खेती को परंपरा से विज्ञान की ओर और उत्पादन से समृद्धि की ओर ले जाने की।"

❋❋❋

मृदा स्वास्थ्य सुधार के लिए ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई

राजेंद्र कुमार यादव, आर. एस. नारोलिया, विनोद कुमार यादव, राकेश कुमार यादव एव हरफूल मीना
कृषि अनुसन्धान केंद्र, उम्मेदगंज, कोटा कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा

भारतीय कृषि प्रणाली में मृदा का स्वास्थ्य एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक है, जो सीधे तौर पर फसलों की उत्पादकता, गुणवत्ता और स्थिरता को प्रभावित करता है। आज के समय में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग ने मृदा की उर्वरता को बुरी तरह प्रभावित किया है। ऐसे में पारंपरिक और टिकाऊ कृषि पद्धतियाँ जैसे ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ता को सुधारने में सहायक सिद्ध हो रही हैं।

ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई के उद्देश्य

ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई एक पारंपरिक कृषि तकनीक है जिसमें गर्मी के मौसम, विशेषकर अप्रैल से जून के बीच, जब खेत खाली होते हैं, तब खेतों की मृदा को 6 से 12 इंच (15 से 30 से.मी.) तक गहराई में पलटा जाता है। यह कार्य ट्रैक्टर चालित मोल्ड बोर्ड हल या डिस्क हल की सहायता से किया जाता है। जुताई के बाद खेत को कुछ समय के लिए खुला छोड़ दिया जाता है ताकि सूर्य की गर्मी का पूरा लाभ मिल सके। इसके उद्देश्य निम्न है –

1. मृदा के अंदर दबे हुए खरपतवारो के बीजों को नष्ट करना।
2. मृदा में संचित कीट और रोगजनकों का नियंत्रण करना।
3. मृदा की कठोर परत को तोड़ना।
4. वायु संचार और जलधारण क्षमता को बढ़ाना।
5. पोषक तत्वों की उपलब्धता सुधारना।

कैसे करें ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई

- ग्रीष्मकालीन जुताई हर तीन वर्ष में एक बार करनी चाहिए।
- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई लगभग 9–12 इंच गहरी करनी चाहिए, अधिकांश किसान एक निश्चित गहराई पर (6–7 इंच) जुताई करते हैं, जिससे वर्षा के कुछ समय बाद जल का अपवाह प्रारंभ हो जाता है।
- गर्मी के समय में खेत की जुताई खेत की ढाल की विपरीत दिशा में करें।
- फसल की कटाई के बाद खेत में जुताई के लिए पर्याप्त नमी होनी चाहिए, अर्थात फसल कटाई के तुरंत बाद जुताई करें। इससे जुताई अच्छी तरह से होती है, ईधन की खपत कम होती है तथा उपकरण की आयु में भी बढ़ोतरी होती है।
- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करते समय खेत की मृदा के बड़े–बड़े ढेले बनाने चाहिए। इन ढेलों से वर्षा जल का अंतःसरण अधिक मात्रा में होता है, जिससे भूजलस्तर में भी वृद्धि होती है।
- हल्की व रेतीली जमीन में ज्यादा जुताई न करें। इससे मृदा भुरभुरी हो जाती है और हवा व बरसात से मृदा का कटाव बढ़ जाता है।
- जुताई के बाद खेत के चारों ओर एक ऊंची मेड़ बनाने से वायु तथा जल द्वारा मृदा के क्षरण की यदि कोई आशंका हो, तो वह भी समाप्त हो जाती है तथा खेत वर्षा जल सोख लेता है।

ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई में उपयोग होने वाले उपकरण

1. एम.वी. प्लाऊ

यह एक विशेष उपकरण है जो ट्रैक्टर से जुड़ता है और किसानों को रोपण के लिए भूमि तैयार करने में मदद करता है। उपकरण के नुकीले हिस्से कठोर जमीन को खोदकर उसे नरम बनाते हैं। यह पिछले साल की फसलों के बचे हुए पौधों को भी मृदा में धकेलता है और हरी खाद की फसल को मृदा में दबाकर सड़ाने के लिये भी उपयोग किया जाता है। यह उपकरण जमीन में गहरी खुदाई करने के लिए बहुत अच्छा है, खासकर गर्मियों में, और इसका उपयोग करना बहुत महंगा नहीं है।

2. डिस्क प्लाऊ

यह भी एक ट्रेक्टर चलित उपकरण है। प्लाऊ की डिस्क उच्च कोटि के स्पाती लोहे द्वारा या सामान्य लोहे के द्वारा निर्मित होते है तथा इनकी धार सख्त व पैनी होती है। इसका प्रयोग बंजर भूमि व अपर्युक्त भूमि में कृषि हेतु भूमि के प्रारंभिक भू परिष्करण प्रक्रिया के लिये विशेषतः सख्त एवं शुष्क बंजर पथरीली एवं उबड़–खाबड़ भूमि पर किया जाता है। यह सूखी कड़ी घांस तथा जडों से भरी हुई जमीन के लिये उपर्युक्त होता है।

3. सब स्वाइलर

यह एक विशेष उपकरण है जो ट्रैक्टर के साथ काम करता है। जब किसान एक ही खेत को बार–बार जोतने के लिए ट्रैक्टर जैसी भारी मशीनों का उपयोग करते हैं, तो जमीन में एक सख्त परत बन सकती है। यह परत पानी और हवा को इसके नीचे जाने में मुश्किल बनाती है, जिससे खेतों में जल भराव जैसी समस्या आने लगती है। इसका असर फसल उत्पादन पर सीधा होता है। अतः सब स्वाइलर एक अत्यंत उपयोगी हल है जो 80 सेंटीमीटर की गहराईयों तक खेत की जुताई कर पाने में सक्षम है।

4. कल्टीवेटर

यह कम पावर के ट्रेक्टर से भी चलने वाला उपकरण है। इस उपकरण से कम डीजल व कम खर्चे में भी जुताई कर सकते है। कल्टीवेटर का उपयोग हल्की मृदाओं में ग्रीष्म कालीन गहरी जुताई के साथ साथ खेत में खाद मिलाने, विस्तृत पंक्ति की फसलों में निराई गुडाई करने तथा भारी मृदाओं में अन्य हलों से जुताई करने के पश्चात खेत को तैयार करने के उपयोग में किया जाता है।

गहरी जुताई का मृदा स्वास्थ्य में लाभ

वैज्ञानिक रूप से, गर्मियों में गहरी जुताई मृदा के स्वास्थ्य, पौधों की वृद्धि और समग्र फसल उत्पादकता के लिए कई लाभों के साथ एक बहुआयामी कृषि पद्धति के रूप में कार्य करती हैः

1. मृदा की संरचना में सुधार करना : गर्मियों में गहरी जुताई का प्राथमिक उद्देश्य सघन मृदा की परतों को तोड़ना है, जिससे मृदा की संरचना और पारगम्यता बढ़ती है। गहरी जुताई के परिणामस्वरूप, बड़े–बड़े ढेले बनते हैं। इसके बाद, गर्मी और ठंड के बीच परिवर्तन के कारण, और कभी–कभी गर्मियों की बारिश के कारण, ये ढेले धीरे–धीरे विघटित हो जाते हैं, जिससे मृदा की संरचना में सुधार होता है। यह प्रक्रिया बेहतर जल संचरण और जड़ प्रवेश प्रदान करती है, जिससे पौधों को नमी तक अधिक प्रभावी ढंग से पहुँचने में मदद मिलती है।

2. मृदा अपरदन में कमी : गहरी जुताई भूमि की ढलान को बाधित करती है, अपवाह को कम करती है और पानी और हवा के कारण होने वाले मृदा के कटाव को कम करती है। यह कटाव नियंत्रण उपाय मृदा की उर्वरता को बनाए रखने में मदद करता है।

3. जलभराव वाले क्षेत्रों में जल निकासी में सुधार: जलभराव वाले क्षेत्रों में, गहरी जुताई जल निकासी और मृदा संरचना में सुधार कर सकती है, जिससे जलभराव की स्थिति से संबंधित फसल के नुकसान का जोखिम कम हो जाता है।

4. सूक्ष्मजीवी गतिविधि एवं मृदा वातन को बढ़ाना: गहरी जुताई से मृदा के वातन में सुधार होता है, जिससे लाभकारी मृदा के सूक्ष्मजीवों के प्रसार के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनती हैं। यह अच्छा मृदा वातन कार्बनिक पदार्थो के अपघटन को तेज करता है, जिससे पौधों की पोषक तत्व ग्रहण करने की उपलब्धता बढ़ जाती है।

5. जल अवशोषण क्षमता को बढ़ाना: ग्रीष्मकालीन जुताई मृदा में वर्षा जल के अवशोषण दर को बढ़ाती है, जिससे खेत में लंबे समय तक नमी बनी रहती है। यह नमी खरीफ फसल उत्पादन के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में कार्य करती है। ग्रीष्मकालीन जुताई से लगभग 3 प्रतिशत वर्षा जल खेत में अवशोषित हो सकता है, जो मानसून के मौसम के दौरान जल प्रबंधन और कृषि उत्पादकता में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करता है।

6. जड़ों का उचित विकास : मृदा की अधिक गहराई तक ग्रीष्मकालीन जुताई पोधो की मजबूत जड़ प्रणाली के विकास को प्रोत्साहित करती है। यह जड़ों का विकास पोषक तत्वों के अवशोषण को बढ़ाता है और समग्र पौधे की शक्ति और स्वास्थ्य का समर्थन करता है।

7. गहरी जुताई से उपज में बढोत्तरी : गहरी जुलाई से फसल उत्पादन में भी वृद्धि होती है। कृषि विशेषज्ञों का कहना है कि खरीफ फसलों के उत्पादन में ग्रीष्मकालीन जुताई सबसे महत्वपूर्ण है। निश्चित अवधि में जुताई करने पर पैदावार 50 प्रतिशत तक बढ़ सकती है। (चतुर्वेदी एवं अन्य 2020)। रबी व जायद की फसल कट जाने के बाद खेत की जुताई करने से फसल के अवशेष, डंठल व पत्तियां आदि मृदा में दब जाते हैं, जो बारिश के मौसम में सड़कर जमीन को कार्बनिक पदार्थ उपलब्ध करवाते हैं।

8. मृदा उर्वरता में सुधार : गहरी जुताई मृदा में कार्बनिक पदार्थ को शामिल करने, सूक्ष्मजीवो की गतिविधि और पोषक तत्व चक्र को बढ़ावा देने में सहायता करती है। यह प्रक्रिया मृदा को आवश्यक पोषक तत्वों से समृद्ध करती है, जिससे इसकी उर्वरता और दीर्घकालिक उत्पादकता बढ़ती है।

9. अवशेषों और ऐलेलोपैथिक यौगिकों का टूटना: शाकनाशी, कीटनाशकों, पिछली फसलों और खरपतवारों के ऐलेलोपैथिक यौगिक का प्रभाव गहरी जुताई के कारण कम हो जाता हैं जिससे आस–पास के पौधों पर संभावित निरोधात्मक प्रभाव कम हो जाता है तथा फसल के स्वस्थ विकास में मदद मिलती है। इससे मृदा में प्रदूषण कम हो जाता है। खेत में इस्तेमाल किए गए रासायनिक उर्वरक लगभग 50–65 प्रतिशत अघुलनशील अवस्था में खेत में पड़ा रह जाता है जिस कारण गर्मी की जुताई से सूर्य की तेज धूप से ये रसायन विघटित होकर घुलनशील उर्वरकों में बदल जाते हैं और अगली फसल को पोषक तत्त्व उपलब्ध करवा देते हैं।

10. मृदा–जनित कीटों और बीमारियों में कमी: गहरी जुताई से मृदा–जनित कीड़े और रोग जीव अधिक तापमान के संपर्क में आते हैं, जिससे उनका जीवन चक्र बाधित हो जाता है। यह प्राकृतिक कीट प्रबंधन दृष्टिकोण रासायनिक कीटनाशकों और कवकनाशी की आवश्यकता को कम कर सकता है। गर्मियों में गहरी जुताई करने से मृदा में उपस्थित सफेद सूंडी का नियंत्रण होता हैं जिससे मूंगफली के फसल उत्पादन में बढ़ोतरी होती है।

11. खरपतवार नियंत्रण और पैदावार वृद्धि : गहरी जुताई प्रभावी ढंग से खरपतवार एवं उनके बीजों को मृदा में दबा देती है जिससे उनके बीज ज्यादा गहराई में पहुंच जाने से उनका अंकुरण नहीं हो पाता है। कुछ बहुवर्षीय खरपतवारों जैसे दुब घास (साइनोडोन डेक्टाइलॉन) और मोथा (साइपरस रोटंडस) के प्रकंद और कंद अधिक धूप के संपर्क में आने से सूखकर नष्ट हो जाते हैं। जिससे पोषक तत्वों और मृदा जल के लिए फसलों और खरपतवारों के बीच प्रतिस्पर्धा कम हो जाती है। यह खरपतवार नियंत्रण उपाय उच्च फसल पैदावार और बेहतर कृषि उत्पादकता में योगदान देता है।

ग्रीष्मकालीन जुताई करते समय सावधानियाँ :

1. समय का चयन सही करें जुताई बहुत अधिक गर्मी या दोपहर के समय न करें, इससे मृदा की नमी तेजी से उड़ जाती है और खेत सूख सकता है।
2. उपयुक्त यंत्रों का प्रयोग करें। मृदा के प्रकार के अनुसार सही जुताई उपकरण (हल, कल्टीवेटर आदि) का चुनाव करें ताकि मृदा को अधिक नुकसान न हो।
3. गहराई का ध्यान रखें बहुत अधिक गहराई तक जुताई करने से मृदा की उपजाऊ परत खराब हो सकती है, इसलिए संतुलित गहराई रखें।
4. नमी का ध्यान रखें जुताई से पहले मृदा में थोड़ी नमी होनी चाहिए, ताकि मृदा भुरभुरी हो और जुताई प्रभावी हो।
5. खेत की सफाई करें जुताई से पहले खेत से पत्थर, खरपतवार और फसलों के अवशेष हटा दें ताकि जुताई सुचारु रूप से हो सके।
6. क्षेत्र विशेष की दृष्टि से अनुकूलन

- दोमट और चिकनी मृदा में– सबसे अधिक प्रभावशाली।
- रेतीली मृदा में–गहराई कम रखनी चाहिए, अन्यथा जलधारण क्षमता प्रभावित हो सकती है।
- जलभराव वाले क्षेत्रों में– सतही जुताई पर्याप्त होती है, गहरी जुताई आवश्यक नहीं।

ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई एक पारंपरिक लेकिन वैज्ञानिक रूप से सिद्ध कृषि तकनीक है जो मृदा के स्वास्थ्य को बहुपरिणामदायक ढंग से सुधारती है। यदि इसे उचित तरीके से अपनाया जाए, तो यह न केवल मृदा की उर्वरता और उत्पादकता बढ़ाती है, बल्कि जैव विविधता को भी बढ़ावा देती है। किसानों को चाहिए कि वे इस पद्धति को अपनाकर टिकाऊ कृषि की दिशा में कदम बढ़ाएँ।

❋❋❋

हरित खाद : मिट्टी की सेहत के लिए लाभकारी

सोनल शर्मा, मनोज कुमार शर्मा, श्रवण कुमार यादव
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा

आज के समय में बढ़ती लागत, मिट्टी की उर्वरता में गिरावट और रासायनिक उर्वरकों पर बढ़ती निर्भरता किसानों के सामने एक बड़ी चुनौती बन गई है। ऐसे में, हरित खाद (Green Manure) एक ऐसा समाधान है जो परंपरागत और वैज्ञानिक दोनों दृष्टिकोण से अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुआ है। हरित खाद का अर्थ है ऐसी फसलें जो अल्पकालीन होती हैं और जिनकी खेती करके उन्हें भूमि में पलटा जाता है, जिससे वे सड़कर मिट्टी में जैविक पदार्थों (organic matter), पोषक तत्वों और नाइट्रोजन की मात्रा को बढ़ाती हैं। हरित खाद का प्रयोग मिट्टी की संरचना सुधारने, जल धारण क्षमता बढ़ाने, सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाने और खरपतवार नियंत्रण जैसे अनेक फायदों के लिए किया जाता है। यह विधि न केवल मिट्टी की सेहत को बेहतर बनाती है, बल्कि रासायनिक उर्वरकों पर खर्च भी कम करती है। हरित खाद खेती की वह ''गुप्त पूंजी'' है, जिसे यदि सही समय और सही विधि से उपयोग किया जाए, तो किसान बिना किसी अतिरिक्त लागत के लाभ में वृद्धि कर सकता है।

हरित खाद की प्रमुख विशेषताएँ और लाभ :

लाभ	विवरण
पोषक तत्वों की आपूर्ति	विशेषकर नाइट्रोजन (N) को जैविक रूप में प्रदान करती है।
जैविक कार्बन में वृद्धि	मिट्टी की संरचना और जलधारण क्षमता में सुधार।
सूक्ष्मजीवों की सक्रियता	मिट्टी के जीवाणुओं और फफूंदों को पोषण मिलता है।
खरपतवार और कीट नियंत्रण	कुछ हरित खाद फसलें एलिलोपैथिक गुण रखती हैं।
लागत में बचत	रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है।

हरित खाद की फसलें और उनकी वैज्ञानिक जानकारी :

1. ढैंचा (Sesbania aculeata)

- कृषि वर्ग : लेग्युमिनोसे (Leguminous crop)
- नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता : 3.5% (शुष्क भार में)
- हरित खाद उत्पादन : 35-40 टन प्रति हेक्टेयर (30–45 दिनों में)
- नाइट्रोजन का योगदान : लगभग 80–100 किग्रा/हेक्टेयर तक
- बुवाई का समय : खरीफ में जून जुलाई, जायद में अप्रैल
- बीज दर : 40 50 किग्रा/हेक्टेयर
- खेत पलटने का समय : फूल आने से ठीक पहले (30 40 दिन की अवस्था)
- खेत में पलटने के बाद सिंचाई करें, ताकि अपघटन तेज हो सके।
- विशेष गुण : क्षारीय व लवणीय भूमि के सुधार में अत्यंत उपयोगी।

2. सन (Crotalaria juncea)

- नाइट्रोजन प्रतिशत : 3.0–3.2%
- हरित द्रव्यमान : 25 30 टन/हेक्टेयर
- बीज दर : 40 50 किग्रा/हेक्टेयर
- खेत पलटने का समय : 6–7 सप्ताह पर
- उपयुक्त क्षेत्र : हल्की से मध्यम मिट्टी

3. मूंग/उड़द (Vigna spp.)

- लाभ : अनाज और हरित खाद दोनों का लाभ
- हरित खाद उत्पादन : 12–15 टन/हेक्टेयर
- नाइट्रोजन योगदान : 40–60 किग्रा/हेक्टेयर
- बीज दर : 25–30 किग्रा/हेक्टेयर
- विशेष : फसल चक्र में ग्रीष्मकालीन अंतराल भरने के लिए श्रेष्ठ

4. ग्लाइरीसिडिया (Gliricidia sepium)

- पत्ती कटाई व खेत में मिलाना एक उत्कृष्ट हरित खाद तकनीक है
- उत्पादन : 20 25 टन हरे पत्ते/हेक्टेयर

प्रभाव : गहरी जड़ों द्वारा पोषक तत्वों को ऊपर लाकर मिट्टी समृद्ध बनाना।

5. सेस्बेनिया रोस्ट्राटा (Sesbania rostrata)

- कृषि वर्ग : लेग्युमिनोसे
- नाइट्रोजन स्थिरीकरण : 3.8%
- हरित खाद उत्पादन : 30–35 टन/हेक्टेयर
- नाइट्रोजन योगदान : 90–110 किग्रा/हेक्टेयर
- बीज दर : 30 35 किग्रा/हेक्टेयर
- बुवाई का समय : खरीफ में जून–जुलाई
- खेत पलटना : 35–40 दिन की अवस्था में
- विशेष गुण : यह हाइपोडर्मल नोड्यूल्स बनाता है जिससे अधिक नाइट्रोजन स्थिरीकरण होता है।
- जलभराव वाली भूमि के लिए अत्यंत उपयुक्त।

6. कवासिया (Tephrosia purpurea)

- कृषि वर्ग : झाड़ीदार लेग्युमिनस
- नाइट्रोजन प्रतिशत : 2.5–3.0%
- द्रव्यमान उत्पादन : 18–20 टन/हेक्टेयर
- बीज दर : 20–25 किग्रा/हेक्टेयर
- खेत पलटना : 50–60 दिन पर
- विशेष गुण : अम्लीय व क्षारीय दोनों प्रकार की मृदाओं के लिए अनुकूल। इसमें कीटनाशक गुण भी होते हैं जिससे कुछ कीटों की संख्या कम होती है।

7. बेरसीम (Trifolium alexandrinum)

- कृषि वर्ग : चारा एवं हरित खाद फसल
- हरित द्रव्यमान : 25–30 टन/हेक्टेयर
- नाइट्रोजन स्थिरीकरण : 2.2%
- बीज दर : 20–25 किग्रा/हेक्टेयर
- खेत पलटना : 55–60 दिन पर
- विशेष गुण : शीतकालीन मौसम में उत्कृष्ट हरित खाद विकल्प। मिट्टी को नरम बनाता है और चारे के रूप में भी उपयोगी।

8. नेपियर घास (Pennisetum purpureum)

- प्रयोग : काटकर हरे रूप में खेत में पलटें
- हरित सामग्री उत्पादन : 40–50 टन/हेक्टेयर
- बीज / कटिंग : जड़ या कटिंग से रोपण
- खेत पलटना : कटाई के तुरंत बाद
- विशेष गुण : जैविक द्रव्य में भारी वृद्धि, खासकर जब गोबर खाद के साथ प्रयोग किया जाए।

9. क्यालीन्द्रा (Calopogonium mucunoides)

- कृषि वर्ग : Creeper/वृत्ताकार फैलने वाली
- हरित द्रव्यमान : 20 25 टन/हेक्टेयर
- बीज दर : 25 30 किग्रा/हेक्टेयर
- खेत पलटना : 50 दिन पर
- विशेष गुण : छायादार व पेड़–पौधों के बीच की भूमि के लिए उपयुक्त, चाय/कॉफी/फल बागानों में अधिक उपयोग।

10. सेनेगाल (Indigofera tinctoria)

- नाइट्रोजन योगदान : 50–60 किग्रा/हेक्टेयर
- हरित द्रव्यमान : 20–25 टन/हेक्टेयर
- विशेष गुण : मिट्टी में जैविक तत्वों का संतुलन बनाए रखने में सहायक, विशेष रूप से दक्षिण भारत में लोकप्रिय।

हरित खाद की मिट्टी पर वैज्ञानिक प्रभाव :

सुधार का पहलू	प्रभाव
भौतिक	संरचना में सुधार, जलधारण में वृद्धि, जड़ वृद्धि के लिए ढीलापन
रासायनिक	नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व सूक्ष्म पोषक तत्त्वों की उपलब्धता में वृद्धि
जैविक	सूक्ष्मजीवों की संख्या व क्रियाशीलता में वृद्धि
मिट्टी का pH संतुलन	विशेषकर ढैंचा व ग्लाइरीसिडिया जैसे पौधों से अम्लीय या क्षारीय मृदा संतुलित होती है

हरित खाद का उपयोग कब और कैसे करें :

1. बुवाई : मुख्य फसल से 45–60 दिन पहले
2. पालन : 30–45 दिन तक बढ़ने दें
3. खेत में पलटना : फूल आने की अवस्था में ट्रैक्टर या हल से मिट्टी में पलटें
4. सिंचाई करें : जिससे तेजी से सड़न हो और पोषक तत्व उपलब्ध हो सकें
5. मुख्य फसल बुवाई : 2–3 सप्ताह बाद करें (सड़न पूरी होने पर)

प्रयोग में सावधानियाँ :

- हरित खाद के साथ गोबर या कम्पोस्ट डालना सड़न को तेज करता है
- सूखी भूमि में सिंचाई के बिना पलटने से अपघटन धीमा होता है
- कुछ मिट्टियाँ (अत्यधिक भारी) में अपघटन धीमा हो सकता है, जैव उर्वरक मिलाना फायदेमंद

निष्कर्ष :

- हरित खाद का प्रयोग केवल एक परंपरागत तरीका नहीं है, बल्कि यह आज के समय की एक वैज्ञानिक आवश्यकता बन चुका है। वर्तमान समय में जब किसानों को महंगे रासायनिक उर्वरकों और गिरती मिट्टी गुणवत्ता से जूझना पड़ता है, ऐसे में हरित खाद एक सस्ता, टिकाऊ और पर्यावरण अनुकूल विकल्प है।
- यह विधि मिट्टी को ''जैविक जीवन'' लौटाती है जहाँ सूक्ष्मजीव सक्रिय होते हैं, संरचना में सुधार होता है और फसलें स्वस्थ होती हैं। हरित खाद फसलों की मदद से हम मिट्टी की सेहत को पुनर्जीवित कर सकते हैं, जिससे फसल उत्पादन स्थायी रूप से बेहतर होगा।
- यदि किसान साल में एक बार भी अपने खेत में हरित खाद का प्रयोग करे। तो यह आने वाले कई सीजन तक खेत की उर्वरता को बनाये रखने में मदद कर सकता है। यही असली 'स्मार्ट फार्मिंग' है जहाँ किसान मिट्टी को पोषित कर भविष्य को सुरक्षित करता है।

ढ़ैंचा हरी खाद की पलटाई

सनई हरी खाद की पलटाई

''अभिनव कृषि'' अंकवार प्रकाशित होने वाली विषय सामग्री

अंक	प्रकाशन माह	विषय–विशेषांक
1	जून	खरीफ फसल विशेषांक, खरीफ फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार, प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण
2	सितम्बर	रबी फसल विशेषांक, रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, उन्नत कृषि उपकरण
3	दिसम्बर	सिंचाई प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती, समन्वित कृषि प्रणाली, आधुनिक डेयरी, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
4	मार्च	जायद खेती, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल–फूल, सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण

धान की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग और उनका प्रबंधन

डी. एल. यादव, के. एम. शर्मा एवं मनोज कुमार
कृषि अनुसंधान केंद्र, उम्मेदगंज, कोटा

भारत में खाद्यान्न की दृश्टि से धान महत्वपूर्ण फसल है। भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या की मांग को पूरी करने के लिए धान की उत्पादकता में वृद्धि करना आवश्यक है। जलवायु परिवर्तन एवं मानसून की बदलती परिस्थितियों को देखते हुए कम पानी उपलब्धता की स्थिति और सिंचित क्षेत्रों में आयी उपज में स्थिरता के कारण धान उत्पादन में वृद्धि एक चुनौतीपूर्ण कार्य हो गया हैं। विभिन्न संसाधनों की कमी के बावजूद, उन्नत किस्में, उन्नत कृषि विधियां, कृषि यंत्रों एवं समुचित कीट एवं बीमारियों का प्रबंधन करके उत्पादन को बढ़ाना सम्भव है। धान की फसल में बहुत से रोगों का प्रकोप देखा गया है। उनकी सही पहचान कर उचित उपचार करके इनसे होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। इन रोगों के प्रमुख लक्षण एवं नियंत्रण के उपाय निम्न प्रकार है।

1. ब्लास्ट रोग

लक्षण : यह रोग फफूँदजनित है जो पिरीकुलेरिया ओराइजी नामक कवक द्वारा फैलता है। धान का यह रोग अत्यंत विनाशकारी होता है। मुख्यतः पत्ती ब्लास्ट, पर्वसंधि ब्लास्ट और गर्दन ब्लास्ट के रूप मे इस रोग को देखते है। इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर दिखाई देते है, लेकिन इसका आक्रमण पर्णच्छद, पश्पक्रम, गांठो तथा दानों के छिलको पर भी होता है। पत्तियों और उनके निचले भागों पर छोटे और नीले धब्बें बनते है, और बाद मे आकार मे बढ़कर ये धब्बें नाव की तरह हो जाते है। फफूंद पौधे के पत्तियों, गांठो एवं बालियों के आधार को भी प्रभावित करता है। धब्बों के बीच का भाग राख के रंग का तथा किनारें कत्थई रंग के घेरे की तरह होते है, जो बढ़कर कई सेन्टीमीटर बड़ा हो जाता है। जब यह रोग उग्र होता है, तो बाली के आधार भी रोगग्रस्त हो जाते है, और बाली कमजोर होकर वही से टूट कर गिर जाती है। भूरे धब्बों के मध्य भाग मे सफेद रंग होता है। रोगी बालियों मे दाने नही बनते है, और बालियाँ सड़े भाग से टूट कर गिर जाती है।

पत्ती ब्लास्ट

गर्दन ब्लास्ट

पर्वसंधि ब्लास्ट

नियंत्रण : प्रोपीकोनाजोल 500 मि.ली. का 500 लीटर पानी मे घोल बनाकर स्प्रे किया जा सकता है। नैक ब्लास्ट की रोकथाम के लिए बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही टेबुकोनाजोल 50% + ट्राइफ्लोक्सीस्ट्रोबिन 25% w/w डब्ल्यू जी 0.4 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव किया जा सकता है। यदि आवश्यक हो तो 15 दिन बाद दूसरा छिड़काव दोहरायें।

2. जीवाणु अंगमारी रोग (बैक्टीरियल ब्लाइट)

यह रोग जैन्थोमोनास ओराइजी पी.वी. ओराइजी नामक जीवाणु से होता है। मुख्य रूप से यह पत्तियों का रोग है। यह रोग कुल दो अवस्थाओं मे होता है, पर्ण झुलसा अवस्था एवं क्रेसेक अवस्था। सर्वप्रथम पत्तियों के ऊपरी सिरे पर हरे–पीले जलधारित धब्बों के रूप मे रोग उभरता है। पत्तियों पर पीली या पुआल के रंग कबी लहरदार धारियाँ एक या दोनो किनारों के सिरे से शुरू होकर नीचे की ओर बढ़ती है और पत्तियाँ सूख जाती हैं। मोती की तरह छोटे–छोटे पीले से कहरूवा रंग के जीवाणु पदार्थ धारियों पर पाये जाते है, जिससे पत्तियाँ समय से पहले सूख जाती है। रोग की सबसे हानिकारक अवस्था म्लानि या क्रेसक है, जिससे पूरा पौधा सूख जाता है। यदि खेत मे पानी का जमाव हो तो धान की फसल से दूर से बदबू आती है। पर्णच्छद भी संक्रमित होता है, जिस पर लक्षण पत्तियों के समान ही होते है।

नियंत्रण : रोकथाम हेतु खड़ी फसल मे रोग दिखने पर कश्वपर ऑक्सीक्लोराइड 1.5 किलोग्राम दवा 500 लीटर पानी मे मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से स्प्रे करें। या स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 2 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करे । खेत से समय–समय पर पानी निकालते रहें तथा नाइट्रोजन का प्रयोग ज्यादा न करें। संक्रमित खेतों का पानी एक से दूसरें खेत मे न जाने दें। स्वस्थ प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें।

3. पर्णच्छंद अंगमारी रोग (शीथ ब्लाइट)

यह रोग राइजोक्टोनिया सोलानी नामक कवक से होता है। भारत के धान विकसित क्षेत्रों मे यह एक प्रमुख रोग बनकर सामने आया है। पानी की

सतह से ठीक ऊपर पौधें के आवरण पर फफूँद अण्डाकार जैसा हरापन लिए हुए स्लेट उजला धब्बा पैदा करती है। पत्तियों के आधार तथा पत्तियों पर बड़े–बड़े धारीदार हरे–भूरे या पुआल के रंग के रोगी स्थान बनते है। बाद मे ये तनो को चारो ओर से घेर लेते है, क्षतों का केन्द्रीय भाग स्लेटीपन लिए सफेद होता है, तथा किनारों पर रंग भूरा लाल होता है और ये क्षत धान के पौधों पर दौजियाँ बनते समय एवं पुष्पन अवस्था मे बनते है। इस रोग के लक्षण मुख्यत: पत्तियों एवं पर्णच्छद पर दिखाई पड़ते है। अनुकूल परिस्थितियों मे फफूँद छोटे–छोटे भूरे काले रंग के दाने पत्तियों की सतह पर पैदा करते है, जिन्हे स्कलेरोशियम कहते है। रोग की उग्रावस्था मे आवरण से ऊपर की पत्तियों पर भी लक्षण पैदा करती है। सभी पत्तियाँ आक्रांत हो जाती है। पौधा झुलसा हुआ प्रतीत होता है, और आवरण से बालियाँ बाहर नही निकल पाती है। बालियों के दाने भी बदरंग हो जाते है। वातावरण मे आर्द्रता अधिक तथा उचित तापक्रम रहने पर, कवक जाल तथा मसूर के दानों के तरह स्कलेरोशियम दिखाई पड़ते है। रोग के लक्षण कल्लें बनने की अंतिम अवस्था मे प्रकट होते है।

नियंत्रण : पर्णच्छद अंगमारी यह धान की मुख्य बीमारी है । पानी अथवा भूमि की सतह के पास पर्णच्छ पर रोग के प्रमुख लक्षण प्रकट होते है। इस रोग की रोगथाम के लिए रोग के लक्षण दिखाई देने पर स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 2 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करे। हेक्साकोनाजोल 1 लीटर दवा 500 लीटर पानी मे घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से स्प्रे करना चाहिए। प्रोपीकोनाजोल 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी मे घोल बनाकर स्प्रे किया जा सकता है। थाईफ्लूजामाइड 375 ग्राम का 500 लीटर पानी मे घोल बनाकर स्प्रे करें। गर्मी मे खेत की गहरी जुताई करें।

4. पर्णच्छद सड़न रोग (स्टेम रॉट)

लक्षण : इस रोग के प्रभाव से पर्णच्छद पर चॉकलेटी रंग के धब्बे पड़ जाते है। पर्णच्छद को खोलकर देखने पर बाली के अन्दर सफेद या गुलाबी रंग की फफूंदी उगी हुई दिखाई देती है।

नियंत्रण : हेक्साकोनाजोल 1 लीटर दवा 500 लीटर पानी या प्रोपीकोनाजोल 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी मे घोल बनाकर स्प्रे किया जा सकता है। 1.0 किलोग्राम मेन्कोजेब का 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें। यदि आव यक हो तो 15 दिन बाद छिड़काव दोहरायें।

5. आभासी कंड रोग (फाल्स स्मट)

धान का यह रोग फफूंद से होता है । मुख्य रूप से यह मृदा–जनित रोग है। इस रोग को कंड़वा रोग के नाम से भी जाना जाता है। हवा में इसके बीजाणु उड़कर स्वास्थ्य बालियों पर पहुंच जाते हैं। इस तरह से कंड़वा रोग धान की फसल में फैलता है। इसका कारण अधिक बारिश के कारण वातावरण में लगातार आद्रर्ता अधिक वर्षा, नाईट्रोजन का अधिक उपयोग, बीजोपचार नहीं करने से प्रकोप अधिक होता है। इस रोग की शुरुआत में दानो पर पीले रंग के गोल गोल मखमली लक्षण दिखाई देते हैं। समय के साथ साथ ये काले पड़ने शुरू हो जाते है और धीरे धीरे पूरी बालियों पर इसका प्रकोप दिखाई देने लगता है। बाली के 3–4 दानों में कोयले जैसा कला पाउडर भरा होता है। जो दाने के फट जाने से बाहर दिखाई पड़ता है। यह मुख्यता वायु के द्वारा फैलता है। अधिक संक्रमण होने पर सारे दाने खराब हो जाते हैं। जिन जातियों में इस रोग का प्रकोप ज्यादा होता है, उनमें धान का उत्पादन कम हो जाता है । इस रोग के लक्षण बाल निकलने वाले के बाद दानों पर दिखाई देते हैं, जिससे उन दानों का आकार काफी बड़ा हो जाता है । इस प्रकोप की वजह से दाने बॉल (गेंद) में बदल जाते हैं ।

नियंत्रण : रोकथाम हेतु संतुलित उर्वरक का उपयोग करें । जिन किस्मों में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है, उन्हें नहीं उगाना चाहिए। बाली निकलने की प्रारंभिक अवस्था में तथा 50 प्रतिशत पुष्पीकरण होने पर मेंकोजेब का 2.0 ग्राम या प्रोपीकोनाजोल 1 मि.ली. प्रति लीटर की दर से 500 लीटर पानी मे मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से स्प्रे करें।

6. भूरा धब्बा रोग (ब्राउन स्पॉट)

यह रोग देश के लगभग सभी हिस्सों मे फैली हुई है, खासकर पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु इत्यादि। यह एक बीज जनित रोग है। इस रोग में धान की फसल को जड़ से लेकर दानों तक को नुकसान पहुंचाता हैं। इस रोग के कारण पत्तियों पर गोलाकार भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। यह रोग फफूंद जनित है। पौधों की बढ़वार कम होती है, दाने भी प्रभावित हो जाते हैं, जिससे उनकी अंकुरण क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। पत्तियों पर तिल के आकार के भूरे रंग के काले धब्बे बन जाते हैं। ये धब्बे आकार एवं माप में बहुत छोटी बिंदी से लेकर गोल आकार का होता है। धब्बों के चारों ओर हल्की पीली आभा बनती है। पत्तियों पर ये पूरी तरह से बिखरे होते हैं। धब्बों के बीच का हिस्सा उजला या बैंगनी रंग की होती है। बड़े धब्बों के किनारे गहरे भूरे रंग के होते हैं, बीच का भाग पीलापन लिए, गेंदा सफेद या घूसर रंग का हो जाता है। ये धब्बे आपस में मिलकर बड़े हो जाते हैं, और पत्तियों को सुखा देता हैं।

नियंत्रण : रोग दिखाई देने पर मैन्कोजेब 3 ग्राम प्रति लीटर पानी मे घोल बनाकर स्प्रे करे। हेक्साकोनाजोल 1 लीटर दवा 500 लीटर पानी मे घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से स्प्रे करना चाहिए। प्रोपीकोनाजोल 500 मि.ली. का 500 लीटर पानी मे घोल बनाकर स्प्रे किया जा सकता है।

7. बकानी रोग

इस रोग के लक्षण रोपाई करने के दो से तीन सप्ताह में दिखाई देने लगते हैं। इसमें रोग ग्रस्त पौधा अन्य पौधों की अपेक्षा अधिक लम्बा हो जाता है। जिसके कारण इसे झण्डा रोग भी कहते हैं। वातावरण में अत्याधिक आद्रर्ता होने पर सड़न भी देखी गयी है। जिससे संक्रमित पौधा सड़ कर समाप्त हो जाता है और यदि यह पौधा नष्ट नहीं हाता तो इसकी बढ़वार सामान्य से अधिक हो कर बालियां तो बनती है किन्तु इन बालियों में दाने नहीं पड़ते, जिससे फसल के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। यह रोग फ्यूजेरियम नाम फफूंदी के संक्रमण से होता है तथा बीज जनित रोग है और संक्रमित बीज के द्वारा पौधों में संक्रमण होता है, तथा बाद में खड़ी फसल में इस रोग में बीजाणु हवा द्वारा फैलकर स्वस्थ्य पौधों को भी संक्रमित कर देते है।

नियंत्रण : इस रोग की रोकथाम का कारगर एवं श्रेष्ठ उपाय बीज शोधन करके बीज की बुआई करना है, किन्तु वर्तमान में बीज उपचार की अवस्था निकल जाने के कारण खड़ी फसल में प्रोपीकोनॉजोल 25 प्रतिशत ईसी नामक फफूंदी नाशक की एक मिली लीटर मात्रा को एक लीटर पानी के हिसाब से घोलकर आवश्यकतानुसार छिड़काब किया जाए।

8. खैरा रोग

यह रोग मिट्टी में जिंक की कमी के कारण होता है। इस रोग में पत्तियों पर हल्के पीले रंग धब्बे बनते हैं जो बाद में कत्थई रंग के हो जाता है। जिंक की कमी वाले क्षेत्र में 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टर आखिरी जुताई करते समय खेत में मिलायें। खड़ी फसल में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई देने पर जिंक सल्फेट 5 ग्राम बुझा हुआ चूना 2.5 ग्राम प्रति ली. पानी की दर से घोल बनाकर 500–700 लीटर घोल प्रति हेक्टेयर का छिड़काव करें एवं आवश्यक होने पर 15 दिन पश्चात् छिड़काव पुनः दोहरायें।

मिर्च के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबन्धन

बी. के. पाटीदार
कृषि अनुसंधान केन्द्र उम्मेदगंज, कोटा

मिर्च एक प्रमुख मसाला व नगदी फसल है। इसका उपयोग हरी तथा पकी दोनों अवस्थाओं में किया जाता है। इसे कच्चा सलाद के रूप में, अचार बनाकर, पकी लाल मिर्च को सुखाकर मसाले की तरह तथा हरी मिठी मिर्च को सब्जी के रूप में प्रयोग करते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से मिर्च में विटामिन ए एवं सी तथा खनिज लवण कैल्शियम, फॉस्फोरस की भी मात्रा होती है। राजस्थान में सबसे ज्यादा जोधपुर जिले में मिर्च की खेती की जाती है। मिर्च के पौधो रोपाई सामान्यतया जून–जुलाई माह में नर्सरी से निकालकर खेतों में की जाती हैं। इसकी उत्पादकता तुलनात्मक रूप से अन्य देशों से कम हैं। इसकी निम्न उत्पादकता के कारणों में एक प्रमुख कारण नाशीजीवों जैसे कीट, रोग तथा सूत्रकृमि आदि का बढता जा रहा प्रकोप हैं। इन नाशीकीटों द्वारा होने वाली हानि लगभग 25–30 प्रतिशत तक पाई जाती हैं। फसल की मुलायम तथा रसदार प्रवृत्ति, उर्वरकों का अधिक प्रयोग तथा उच्च आर्दता में फसल का उगाया जाना नाशीजीवों को आकर्षित करता हैं। मिर्च की फसल में 20 से भी अधिक कीटों द्वारा नुकसान होता हैं जो पत्तियों व फलों को नुकसान पँहुचाते है उनमें से कुछ कीट प्रमुख है ।

सफेद मक्खी : इस कीट के शिशु व वयस्क दोनो ही पत्तियों के कोमल भागो से रस चूस कर काफी नुकसान पहुचाते है पत्तियां सिकुड जाती है तथा पौधो की बढ़वार घट जाती है, (यह मक्खी के आकार से बहुत छोटी तथा इसके पख सफेद रंग के होते है) और फल कम लगते है। यह मक्खी एक प्रकार का तरल पदार्थ स्त्रावित करती है जिससे फफूंदी रोग भी हो जाता है, पौधो का विकास एवं प्रकाश सन्शलेषण अवरूद्ध हो जाता है । यह जितना नुकसान रस चुस कर नही करती उससे कही अधिक विषाणु रोग हो फैलाकर करती है ।

मोयला : यह कीट चेपा, माहू व लाही के नाम से भी जाना जाता है तथा छोटे आकार व कोमल शरीर वाला होता है। इसकी अवयस्क (पंखरहित) एवं वयस्क (पंखवालें) दोनों अवस्थायें फसल को क्षति पहुँचाती है जो पौधे के कोमल तनो, पत्ती एवं पुष्प से रस चूस कर पौधे का विकास रोक देते है। जिन स्थानो पर मोयला बैठता है वहा एक प्रकार का लसीला एवं शहद जैसा पदार्थ स्त्रावित करता है । जिससे बाद में फफूंदी रोग हो जाता है । इस कीट की पंख वाली अवस्था बीमारियों के प्रसार में भी सहायक होती है।

पर्णजीवी : यह कीट चूरदा या रसाद कीट के नाम से भी जाना जाता है । यह काले पीले रंग का बहुत छोटा परन्तु आकार में लम्बा होता है। इसके छः पैर व पंख रोयेदार या झालरदार होते है इस कीट के शिशु तथा वयस्क दोनो ही कोमल एवं नई पत्तियों के नीचली सतहों से हरा पदार्थ खुरच कर उनका रस चूसते है । जिससे पत्तियों पर छोटे छोटे सफेद या भूरे निशान बन जाते है तथा पत्तियां सिकुड जाती है ज्यादा लम्बे समय तक प्रकोप रहने से पत्तिया सूख जाती है ।

बरूथी : यह बहुत छोटे छोटे आठ पैरो वाले जीव, कीडों, जैसे ही माने जाते है और सामान्यतः नजर नही आते है। इसे मकडी नाम से भी जाना जाता है। ये पत्तियों की निचली सतह से रस चूसती है। इनके लगातार रस चूसने से पत्तियो पर सफेद निशान बन जाते है। पौधो पर फल कम संख्या में लगते है ।

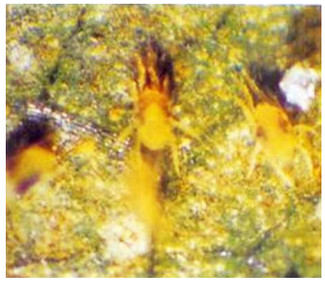

हरा तेला : यह फुदकने वाले बहुत छोटे या मध्यम आकार के हरे रंग के जीव अधिकतर पत्तियों की निचली सतह पर रहते है तथा पत्ती पर तिरछे चलते है। इनके शिशु व वयस्क दोनो ही पौधे से रस चूसकर उसे कमजोर बना देते है। इसके अलावा यह कीट विषाणु रोग के प्रसार में भी सहायक होते है। यह कीट अपने मुंह से पत्तियों पर एक प्रकार टाक्सिन छोडकर भी नुकसान पहुंचाते है ।

फल छेदक : फल छेदक कीट में मुख्यतया टमाटर का फल छेदक व तम्बाकू की लट प्रमुख हैं। इन कीटों की लटे फलो में छेद कर अन्दर प्रवेश कर फलो को खाती है। इनके प्रकोप से फल काणें व सड़ जाते है। इससे उत्पादन में कमी के साथ साथ फलो की गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है। ये कीट मिर्च के साथ अन्य फसलों जैसे तम्बाकू, कपास, टमाटर, चना इत्यादि में भी नुकसान पहुचाते है ।

टमाटर का फलछेदक कीट के अण्डे व लट

टमाटर का फलछेदक कीट के प्रौढ

तम्बाकू कीट की लटे

तम्बाकू कीट के प्रौढ़

रस चुसक कीटों का नियन्त्रण :

- नर्सरी में बीजो की बुवाई से पूर्व क्यारियों में कार्बोफयूरान 3 जी कण 8 से 10 ग्राम प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से क्यारी की भूमि में मिलाकर सिंचाई करे । यदि बुवाई के पूर्व भूमि उपचार नही किया है तो खेत में पौध रोपाई से दो सप्ताह पूर्व मिथाइल डिमेटोन 25 ई. सी. 0.02 प्रतिशत या ऐसीफेट 75 प्रतिशत एस पी दवा का 0. 05 प्रतिशत घोल का छिडकाव करें।
- पौधशाला (नर्सरी) में पौधो को 40 मेस वाली सफेद नाइलोन जाली से ढककर रखे।
- रस चूसक कीटों के नियन्त्रण हेतू पीले चिपचिपे पाश (ट्रेप) सफेद मक्खी व माहू के लिए और नीले चिपचिपे पाश (ट्रेप) थ्रिप्स के लिए 20 ट्रेप प्रति एकड़ क्षैत्रफल के हिसाब से काम में लेवें ।
- रस चूसक कीटों के नियन्त्रण हेतु वर्टिसिलियम लेकेनाई (109 CFU/ml) का 4 मिली प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
- नीम आधारित कीटनाशी नीम की निम्बोली का बीज (एन.एस.के.ई) का 5 प्रतिशत या नीम का तेल 2 प्रतिशत का छिड़काव करें।
- परभक्षी कीट क्राइसोपरला कारनिए 2 ग्रब प्रति पौधा की दर से खेत में छोडने की व्यवस्था करें।
- बरूथी के प्रकोपानुसार पहला छिडकाव डाइकोफाल 18.5 ई.सी. सवालीटर प्रति हैक्टर की दर से रोपाई के तीन सप्ताह बाद करे। दूसरा छिडकाव पहले छिडकाव लगभग के तीन सप्ताह बाद आवश्यकतानुसार क्लारोपाइरीफास 20 ई.सी. डेढ लीटर प्रति हैक्टर में नीम आधारित कीटनाशी (0.03 प्रतिशत) डेढ़ से दो लीटर प्रति हैक्टर की दर से मिलाकर करे। तीसरा छिड़काव आश्यकतानुसार तीन सप्ताह बाद मिथाइल डिमेटान 25 ई.सी. (0.025 प्रतिशत) 800 मिली लीटर प्रति है. में घुलनशील गधंक 80 डब्ल्यू. पी. (0.2 प्रतिशत) दो किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से मिलाकर करे।
- खड़ी फसल में थ्रिप्स, सफेद मक्खी व माहू के नियन्त्रण के लिये इमिडाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिशत 3 मिली प्रति 10 लीटर या डाईफेन्थ्यूरोन 50 डब्ल्यू. पी. 1.0 ग्राम/लीटर या फिप्रोनिल 5 एस.सी. 2 मिली प्रति लीटर पानी में घोलकर कीट का प्रकोप प्रारम्भ होने पर आवश्यकतानुसार 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

फल छेदक कीटों का नियंत्रण :

- फलछेदक कीट के व्यस्क के पता करने हेतू फेरोमोन पाश / 5 पाश प्रति है. के हिसाब से काम मे लेवें
- बेसीलस थूरिनजियेन्सिस क्रस्टाकि नामक जीवाणु का 1.5 लीटर घोल प्रति हैक्टर पानी में मिलाकर छिडकाव करने से फलछेदक कीट में रोग पैदा कर उन्हे नियन्त्रण करने में मदद करता है ।
- ट्राइकोग्रामा ब्रोसिलियेन्सिस या ट्राइकोग्रामा किलोनिस अण्ड परजीवी को खेत में 50000 अण्डे प्रति हैक्टर की दर से छोडें यह परजीवी फल छेदक कीट के अण्डों में अपने अण्डे देता है जिससे फल छेदक कीट के अण्डे नष्ट हो जाते है ।
- न्यूक्लियर पालीहाइड्रोसिस वाइरस (एन पी वी) के 250 एल ई 1 लीटर प्रति हैक्टर का फूलन से फलन तक तीन छिडकाव करने से फल छेदक कीट को कम किया जा सकता है ।
- नीम की निम्बोली के सत्त का 5 प्रतिशत घोल फल धेदक कीट की सुण्डी को नियंत्रित करने मे बहुत ही उपयोगी पाया गया है यह सस्ता एवं सुरक्षित उपाय है।
- फलछेदक कीटों के नियंत्रण के लिए निम्न कीट नाशकों इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 प्रतिशत एस.जी. 0.4 ग्राम प्रति लीटर पानी या क्लोरएन्ट्रानिलीप्रोल 18.5 प्रतिशत एस.सी. 3 मिली प्रति 10 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

❋❋❋

समेकित कृषि प्रणाली मॉडल : आत्मनिर्भर किसान की ओर एक कदम

जगदीश प्रसाद तेतरवाल, महेन्द्र सिंह, राकेश कुमार यादव एवं रिशिका चौधरी

कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा, कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटा, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

भारत में लगभग 8 5 प्रतिशत किसान लघु एवं सीमांत श्रेणी में आते हैं और कृषि जोत का आकार लगातार छोटा होता जा रहा है। देश के अधिकांश किसान मुख्यतः एकल फसल प्रणाली पर निर्भर हैं। इस प्रणाली के निरंतर उपयोग से मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता में गिरावट, संसाधनों की दक्षता में कमी, असंतुलित आहार के कारण पोषण समस्या, कृषि बेरोजगारी में वृद्धि, मृदा स्वास्थ्य का ह्रास, पर्यावरण प्रदूषण में बढ़ोतरी तथा कीट एवं रोगों की समस्या में वृद्धि जैसी गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इसके साथ ही फसल उत्पादन लागत भी लगातार बढ़ रही है।

इन परिस्थितियों में लघु एवं सीमांत किसानों के लिए टिकाऊ कृषि प्रबंधन हेतु 'समेकित कृषि प्रणाली' अत्यंत आवश्यक बन गई है। इसका मुख्य उद्देश्य किसानों के खेत पर उपलब्ध संसाधनों, उनकी आर्थिक स्थिति तथा परिवार की खाद्य एवं चारे की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए फसल उत्पादन के साथ–साथ अन्य कृषि–आधारित व्यवसायों को जोड़ना है। इन व्यवसायों में पशुपालन, मुर्गी पालन, बकरी पालन, मधुमक्खी पालन, मछली पालन, बागवानी, बाउंड्री प्लांटेशन तथा सहायक गतिविधियाँ जैसे केंचुआ खाद (वर्मी कम्पोस्ट), नाडेप कम्पोस्ट, अजोला इकाई और गोबर गैस आदि शामिल हैं। इन सभी को अपनाकर किसान कम भूमि और समय में अधिक उत्पादन एवं लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

समेकित कृषि प्रणाली एक ऐसी खेती की पद्धति है, जिसमें फसल उत्पादन के साथ–साथ अन्य कृषि से जुड़े उद्यमों जैसे पशुपालन, मत्स्य पालन, मुर्गी पालन, बकरी पालन, बागवानी, मधुमक्खी पालन आदि को एक साथ जोड़ा जाता है। इस प्रणाली में खेत के सभी संसाधनों (जमीन, पानी, पशु, श्रम आदि) का आपस में समन्वय करके उपयोग किया जाता है, ताकि कम लागत में अधिक उत्पादन और अधिक आय प्राप्त हो सके। समेकित कृषि प्रणाली में ऐसे घटकों का चयन किया जाता है, जिनके बीच कम प्रतिस्पर्धा (minimum competition) और अधिक पूरकता (maximum complementarity) हो। ऐसी व्यवस्था जिसमें एक उद्यम से निकलने वाला अपशिष्ट या उत्पाद, दूसरे उद्यम के काम आ जाए।

समेकित कृषि प्रणाली के मुख्य उद्देश्य :

- छोटी जोत से अधिक लाभ (मुनाफा) प्राप्त करना।
- गुणवत्तायुक्त कृषि उत्पादों के माध्यम से पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करना।
- संसाधनों के पुनः चक्रण द्वारा खेती की लागत कम करना।
- स्थिर आय, रोजगार सृजन एवं आजीविका सुरक्षा प्रदान करना।
- मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण की सुरक्षा करना।
- कृषि में युवाओं की रुचि बढ़ाना तथा कृषि पर्यटन की संभावनाओं को बढ़ावा देना।
- कृषि उत्पादन में स्थिरता (टिकाऊपन) बनाए रखना।

उक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न कृषि परिस्थितियों के लिए समेकित कृषि मॉडल की आवश्यकता है।

अतः राजस्थान के दक्षिण–पूर्वी आर्द्र मैदानी क्षेत्रों की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए फसल उत्पादकता व लाभ को बढानें के लिए एवं कुशल वैकल्पिक खेती प्रणालियो का मूल्यांकन करने के लिए विगत वर्षो में विभिन्न प्रकार के क्षेत्र प्रयोग किये गये है जिनके आशातित परिणामों के आधार पर निम्न सिफारिशें किसानों के लिए विकसित कर प्रसारित की जा रही है।

राजस्थान के दक्षिणी–पूर्वी आर्द्र मैदानी क्षेत्र हेतु समेकित शि प्रणाली मॉडल :

क्षेत्र में उपलब्ध औसत जोत, संसाधन एवं बाजार मांग के आधार पर 1 .0 हैक्टेयर क्षेत्रफल का समेकित कृषि प्रणाली मॉडल कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा पर अनुसंधान एवं प्रदर्शन हेतु विकसित किया गया है। संभाग के लघु एवं सीमांत किसानों (1 .0 है.) के लिए समेकित कृषि प्रणाली के घटक निम्न प्रकार है:–

1. फसल उत्पादन :

इस घटक के अन्दर कुल 0 .4 5 हैक्टेयर क्षेत्रफल है जिसमें परिवार की खाद्य आवश्यकता, पशु चारा, मृदा स्वास्थ्य एवं आय सृजन हेतु 3 फसल

चक्रों का समायोजन किया गया है जिसमें सोयाबीन–गेंहूँ, मीठी मक्का + उड़द (1:1) – धनिया–ग्रीष्मकालीन मूंग, उड़द – सरसों – चंवला (सब्जी+चारा) फसल चक्र सम्मिलित है। मॉडल में जल दक्षता बढ़ाने के लिए फव्वारा सिंचाई पद्धति का उपयोग किया जाता है।

2. उद्यानिकी फसलें :

इस घटक के अन्दर कुल 0.30 हैक्टेयर क्षेत्रफल में द्वि–स्तरीय उद्यानिकी बगीचा स्थापित है जिसमें क्षेत्र विशेष एवं बाजार मांग के आधार पर अमरूद एवं नींबू के फलवृक्ष एवं मौसम अनुसार अन्तःशस्य के रूप में सब्जियाँ व फूल लिए जाते हैं। जिससे कि कम क्षेत्र में अधिक आय प्राप्त की जा सके। मॉडल में जल दक्षता बढ़ाने के लिए बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति का उपयोग किया जाता है।

3. पशुपालन इकाई एवं संबंधित इकाईयाँ :

इन घटकों के अन्तर्गत कुल 0.21 हैक्टेयर क्षेत्रफल में विभिन्न इकाईयाँ स्थापित है। जिसमें मुख्यतः–

- **डेयरी इकाई :–** मॉडल में चारा एवं अन्य संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर दो जानवर (गिर नस्ल की गाय एवं मुर्रा नस्ल की भैंस) का पालन किया गया है। जिससे कि गुणवत्तायुक्त दुग्ध उत्पादन के साथ गौमूत्र, गोबर गैस, जैविक खादें प्राप्त होती हैं। जिससे किसान अपनी लागत कम कर अधिक आय अर्जित कर सकता है।
- **बकरी पालन इकाई :–** इसमें भी चारा एवं अन्य संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर कुल 10 बकरी (9 बकरी व 1 बकरा) की इकाई स्थापित की गई है। इसके अन्तर्गत सिरोही नस्ल की बकरियां है जो कि दुध एवं मांस दोनों के लिए काम में ली जाती है। इस नस्ल की बकरियों में दो बच्चे देने की संभावना अधिक रहती है तथा यह 1.25 से 1.50 लीटर दूध प्रतिदिन देती है।
- **मुर्गी पालन इकाई :–** इसमें प्रताप धन/कड़कनाथ प्रजाति के 20 से 30 मुर्गियों को घर के पिछवाड़े या खाली पड़ी जगह (बेक यार्ड पॉल्ट्री) को उपयोग में लेकर कम खर्चे में वर्षभर मांस व अण्डे से अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है।
- **हरा चारा इकाई :–** डेयरी व बकरी पालन इकाई हेतु वर्षभर हरा चारा उपलब्धता के लिए 0.15 हैक्टेयर क्षेत्रफल में इस इकाई की स्थापना की गई है। जिसमें मौसम अनुसार अलग–अलग समय पर आवश्यकतानुसार हरे चारे हेतु ज्वार चरी, राई घास, चारा चुकन्दर, बरसीम, जई, चारा मक्का एवं मेढ़ों पर नेपियर घास, सहजन, अरडू आदि का समायोजन किया गया है।
- **वर्मीकम्पोस्ट इकाई :–** इसके अन्तर्गत 20×3×1.5 फीट के कुल 4 बेड बनाऐं गए है जिसमें पशुओं से प्राप्त ताजा गोबर व फसल अवशेषों से केंचुआ खाद तैयार की जाती है। इसके लिए विशेष रूप से आईसिनिया फोईटिडा नामक प्रजाति के केंचुऐं काम में लिए जाते हैं। जिससे फसलों के लिए गुणवत्तायुक्त खाद एवं अतिरिक्त आय के साथ–साथ रसायनिक उर्वरकों की निर्भरता को कम किया जात सकता है।
- **नाडेप कम्पोस्ट इकाई :–** इसके अन्तर्गत 10×6×3 फीट की एक बेड है। जो कि खेतों से प्राप्त फसल अवशेष, घर का अवशिष्ट पदार्थ, गोबर व खेत की मिट्टी से 100 से 120 दिनों में उच्च गुणवत्तायुक्त जैविक खाद तैयार कर खेतों में वापस पुनःचक्रण किया जाता है। जिससे मृदा का स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है।
- **अजोला इकाई :–** इसके अन्तर्गत 10×4×1.5 फीट की दो बेड है। अजोला एक जलीय फर्न है जो कि एक सस्ता, सुपाच्य एवं पौष्टिक पशु आहार है। इसमें प्रोटीन, वसा, खनिज तत्व, रेशा आदि प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यह गाय, भैंस, बकरी व मुर्गियों के लिए फीड सप्लिमेंट के साथ–साथ हरा चारा का विकल्प है।
- **गोबर गैस इकाई :–** इसके अन्तर्गत 2 घन मीटर की गोबर गैस इकाई की स्थापना की गई है जिसमें पशुओं से प्राप्त ताजा गोबर से धुआं रहित पर्यावरण मित्र गैस व उच्च गुणवत्तायुक्त जैविक खाद स्लरी भी तैयार होती है। जिससे एक छोटे परिवार की आवश्यकतानुसार रसोई गैस की पूर्ति कर बाहरी एलपीजी गैस के खर्चे को कम किया जा सकता है।
- **गौमूत्र संग्रहण एवं मड पम्प इकाई :–** पशुओं से प्राप्त गौ मूत्र को इकट्ठा कर जैविक पेस्टीसाइड के रूप में काम में लिया जा सकता है तथा पशुओं के शेड से प्राप्त तरल अवशिष्ट को इकट्ठा कर मड पम्प द्वारा खेतों में पुनःचक्रण किया जाता है जिससे कि भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाया जा सके।
- **पोषण वाटिका :–** 5–6 औसत परिवार के सदस्यों की पोषण सुरक्षा हेतु लगभग 200 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में पोषण वाटिका स्थापित की गई है। जिसमें विभिन्न हरी पत्तेदार, कन्द एवं अन्य सब्जियों का समायोजन करके वर्षभर पोषण युक्त जैविक ताजा सब्जियाँ उपलब्ध हो सके। जिससे किसान परिवार के स्वास्थ्य के साथ–साथ घर खर्चे में कमी की जा सके।

4. मेढ़ पर पौधरोपण :– समेकित कृषि प्रणाली मॉडल की मेढ़ों पर सहजन, अरडू, अनार, करौंदा व बैल वाली सब्जियाँ लगाकर प्रति इकाई अधिक उत्पादन एवं अतिरिक्त आय के साथ–साथ वातावरण सुरक्षा को बनाए रखने में सहयोगी है।

प्रचलित फसल पद्धति की तुलना में समेकित कृषि प्रणाली मॉडल के परिणाम

- 2.5 गुना अधिक एवं वर्शभर आय
- 3.0 गुना अधिक रोजगार सृजन
- हरा चारा, सूखा चारा, दाना, खाद व उर्वरकों की आत्मनिर्भरता।
- विविधिकृत भोज्य सामग्री (धान्य फसलें, दालें, तिलहनी फसलें, सब्जियां, फल, दूध, अण्डे/मांस, इत्यादि) द्वारा परिवार की पोषण सुरक्षा।
- मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संरक्षण में सुधार।
- संसाधनों (फसल अवशेष, शेड वेस्ट, जैविक खादें) के पूर्नचक्रण से खेती की लागत में कमी।

अतः राजस्थान के दक्षिणी–पूर्वी आर्द्र मैदानी क्षेत्र में यह समेकित कृषि प्रणाली मॉडल एक वरदान साबित हो रहा है। इसके सकारात्मक परिणामों को देखते हुए किसान आत्मनिर्भरता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम बढ़ा सकते हैं।

पॉली हाउस में सूत्रकृमि का प्रकोप- समस्या व समाधान

जुगल किशोर सिल्ला एवं भरत लाल मीना
राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुरा, जयपुर, राजस्थान पशु चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर

राजस्थान के सम्पूर्ण खेती योग्य क्षेत्र का लगभग 70 प्रतिशत भाग, बारानी, वर्षा आधरित है। वर्तमान में जलवायु परिवर्तन से कृषि उत्पादन पर प्रभाव देखे जा रह हें। विगत वर्षो मे जलवायु परिवर्तन के परिद्श्य में वर्षा की विषम परिस्थितियो जैसेः– वर्षा का विलम्ब से प्रारम्भ होना। बीच में लम्बे समय तक सूखे की स्थिति का होना। वर्षा का जल्दी समाप्त होना। फसल की विभिन्न अवस्थाओ पर भारी वर्षा व बाढ़ की स्थिति तथा लम्बे समय के बाद मानसून के अंत मे अच्छी वर्शा का होना इत्यादि। ऐसी दशा मे किसान के लिए सामान्य मोसम में खुले वातावरण में फसले उगाना मुश्किल होता जा रहा हे। तथा प्रति हेक्टेयर फसलो की पैदावार भी घटती जा रही है।

इस जलवायु परिवर्तन व घटती पैदावार के चलते यह आवश्यक है कि किसान नई तकनीकें या विधियॉ अपनाकर बदलते मौसम का असर फसलो की उत्पादकता पर कम हो। इस स्थिति को देखते हुए संरक्षित खेती ही एक ऐसी तकनीक है जिसमे फसलोत्पादन के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया जा सकता है। तथा पैदावार व गुणवता में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार की तकनीक. उच्च उत्पादकता के साथ–साथ कम क्षेत्र में अधिक उत्पादन करने में सक्षम है। इस तकनीक मे प्रति इकाई क्षेत्रफल उत्पादन (4–5 गुना) तो अधिक मिलता ही है। साथ ही बे–मोसमी फल सब्जियॉ जैसे खीरा, तरबूज, खरबूज, शिमला मिर्च, टमाटर आदि। फूलो मे कार्नेशन, गुलाब, जरबेरा सालभर उगाई जा सकती है। पॉली हाउस का तापमान बाहर के तापमान से 5–10 डि्ग्री ज्यादा रहता है। जबकि पूर्ण रूप फसल नियंत्रण वाले पॉली हाउस में तापमान, नमी, प्रकाश आदि फसल की आवश्यकता के आधार पर निर्धारित किये जाते है। मृदा में फसल के कई प्रकार के शत्रु उपस्थित होते है। जैसे बेक्टिरिया, फंजाई, प्रोटोजोआ, वायरस व सूत्रकृमि। इनमे से सूत्रकृमि सबसे ज्यादा हानिकारक है। वृक्काकार, पुटी, स्तम्भन, गुदाकार, जड़ गांठ सर्पिल सूत्रकृमि आदि। इनमें से जड़ गांठ सूत्रकृमि पॉली हाउस में ज्यादा नुकसान करता है। पॉली हाउस में तापमान व नमी इसकें अनुकूल रहते है।

पॉलीहाउस का नियंत्रित गर्म और नमी वाला तापमान सूत्र मियों के प्रजनन के लिए आदर्श होता है। बार–बार एक ही फसल (जैसे टमाटर, खीरा, शिमला मिर्च) उगाने से मिट्टी में इनकी संख्या तेजी से बढ़ती है। संक्रमित मिट्टी, पुराने फसल अवशेष, या दूषित रोपण सामग्री (पौध) के माध्यम से यह एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से फैलते हैं। सिंचाई के पानी के बहाव से भी सूत्रकृमि के अंडे और लार्वा पूरे पॉलीहाउस में फैल सकते हैं।

सूत्रकृमि द्वारा उत्पन रोग के लक्षण :
पौधे की जड़ो पर मोटी गांठे बन जाती है। नियमित सिंचाई करने पर भी पौधा मुरझा जाता है। पौधा आसानी से उखड़ जाता है। रोगग्रसित पौधो की वृद्धि रूक जाती है। पत्तियो में पीलापन, मुरझाना, पुष्प तथा फल बनने में देर एव फलो की संख्या में कमी एव आकार छोटा हो जाता है। पौधो की जड़ो में जहां सूत्रकृमि रहते है। वे फूल कर अनिश्चित आकार की ग्रंथिया मे परिवर्तित हो जाती है। अधिक चोड़ी पत्तियों वाले पौधे, जैसे तम्बाकू या खीरा वर्ग के पौधो में दिन के समय मूरझान म्लानि के लक्षण देखे जा सकते है।

सूत्रकृमि द्वारा क्षति :
मूल ग्रथि सूत्रकृमियो के सकमण से पौधों में जल एवं पोषक तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है। तथा अनेक कन्द–मूल फसले, जैसे–हल्दी, अदरक, आलू, आदि कुरू एवं विकृत हो जाती है। जिससे उनका विकय मूल्य घट जाता है। यह मूलाग्रो को नष्ट करता है। मूलग्रंथि सूत्रकृमियों के प्रकोप के कारण पौधे दूसरे रोगजनको के लिए रोगग्राही हो जाते है। पौधो में रोग प्रकोप बढ़ जाता है। तथा कई बार सम्पूर्ण नष्ट हो जाती है।

पॉली हाउस में सूत्रकृमि का प्रबन्धन :
पॉली हाउस के निर्माण से पूर्व सूत्रकृमि हेतु मिट्टी की जांच करायें। पॉली हाउस के निर्माण के समय उसके चारों और की दीवार कम से कम 1–2 फीट ऊंची होनी चाहिए ताकि बाहर का व्यर्थ पानी व पानी के साथ सूत्रकृमि बाहर अन्दर नही जा सके। पॉली हाउस का मुख्य द्वार पक्का बनायें। पॉली हाउस में उपयोग आने वाले सभी यंत्रों व औजारो को अलग रखना चाहिए। तथा उनका प्रयोग पॉली हाउस से बाहर नही करे। नर्सरी तैयार करने के लिए निर्जमीकृत माध्यमों जैसे कॉकोपिट, फोम, ब्लॉक, रॉक वुल आदि का प्रयोग करें। जहा तक सम्भव हो प्लास्टिक ट्रे में ही नर्सरी तैयार करें। प्लान्टिंग बेड्स का निर्जमीकरण करें।

❋❋❋

आधुनिक कृषि में बीज गोलीकरण (सीड पेलेटिंग) की उपयोगिता

मनोज कुमार एवं संध्या

कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा

वैश्विक स्तर पर 21वीं सदी की कृषि के सामने बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के साथ–साथ जलवायु परिवर्तन और घटती कृषि योग्य भूमि जैसी गंभीर चुनौतियाँ हैं। इन परिस्थितियों में, कृषि उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने का सबसे प्रभावी और वैज्ञानिक माध्यम बीज को माना गया है। बीज किसी भी फसल की रीढ़ होता है। यदि बीज स्वस्थ और सक्षम है, तो फसल की उत्पादकता कई गुना बढ़ जाती है। आधुनिक कृषि विज्ञान में केवल अनुवांशिक रूप से शुद्ध बीजों का विकास ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि बुवाई के समय उनकी प्रदर्शन क्षमता को निखारना भी अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है।

प्राकृतिक रूप से कई महत्वपूर्ण फसलों के बीज आकार में अत्यधिक सूक्ष्म, हल्के, अनियमित या टेढ़े–मेढ़े होते हैं। इन बीजों की पारंपरिक तरीके से बुवाई करने हेतु बीज की अधिक मात्रा में आवश्कयता होती है, क्योंकि इन्हें न तो हाथ से समान दूरी पर बोया जा सकता है और न ही आधुनिक बुवाई मशीनें इन्हें सही ढंग से पकड़ पाती हैं। इसके अतिरिक्त, मिट्टी की ऊपरी परत पर रहने के कारण ये बीज कीड़ों, पक्षियों और फफूंद जनित रोगों का आसानी से शिकार हो जाते हैं। इन चुनौतियों के समाधान में बीज आवरण और गोलीकरण तकनीकें अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुई हैं। ये तकनीकें दलहनी अनाज, तिलहनी तथा विभिन्न सब्जियों सहित अनेक फसलों पर अपनाई जा सकती हैं। इस प्रक्रिया के अंतर्गत सूक्ष्म और अनियमित बीजों पर विभिन्न पोषक तत्वों, सुरक्षात्मक रसायनों और अक्रिय सामग्रियों की परतें चढ़ाई जाती हैं। इसका मुख्य उद्देश्य बीजों को एक समान गोल आकार प्रदान करना है ताकि उनकी बुवाई आसान हो सके और वे मिट्टी में विपरीत परिस्थितियों में भी सुरक्षित रहकर शत–प्रतिशत अंकुरित हो सकें।

बीज गोलीकरण हेतु आवश्यक सामग्री

बीज गोलीकरण में बीजों को चिपकने वाली सामग्री, व लाभकारी सूक्ष्मजीवों की कई परतों से लेपित किया जाता है, जिससे बीज समान आकार के टिकाऊ और सुरक्षित बन जाते हैं। गोलीकरण के लिए उपयोग की जाने वाली सामग्रियों को मुख्य रूप से तीन भागों में बांटा जाता है।

जैविक/जैव–आधारित संबद्धक : विभिन्न प्रकार के जल–घुलनशील बहुलक जैसे की अरेबिक गम, जिलेटिन, मिथाइल सेलुलोज, कार्बोक्सिमिथाइल सेलुलोज और स्टार्च जो अपनी जैव–निम्नीकरणीयता के कारण व्यापक रूप से उपयोग किए जाते हैं। इनका कार्य सामग्री को बीज से चिपकाए रखना है।

सिंथेटिक/कृत्रिम संबद्धक : पॉलीविनाइल अल्कोहल और पॉलीविनाइल एसीटेट जो की बीज को बेहतर एकरूपता और स्थायित्व प्रदान करते हैं।

भराव सामग्री : कैल्शियम कार्बोनेट, जिप्सम, क्ले (मिट्टी), पीट मास, डायटोमेसियस अर्थ और चारकोल। ये बीज को मोटाई और आकार देते हैं।

सक्रिय तत्व : कीटनाशक, फफूंदनाशी, सूक्ष्म पोषक तत्व, वृधि नियामक और लाभकारी बैक्टीरिया ।

बीज गोलीकरण की प्रक्रिया

यह प्रक्रिया मुख्य रूप से बीज प्रसंस्करण संयंत्रों में मशीनों द्वारा की जाती है, जिसे निम्नलिखित चरणों में किया जाता है।

बीज की सफाई एवं छंटाई

↓

गेंद/बाइंडर का छिड़काव (बीज को गीला करना)

↓

भराव सामग्री डालना (रोटेटिंग पैन/ड्रम में घुमाना)

↓

सक्रिय रसायनों/पोषक तत्वों का मिश्रण

↓

क्रमिक सुखाना (नमी 8-10%)

↓

ग्रेडिंग और पैकेजिंग

बीज गोलीकरण के लाभ

1. सटीक और यंत्रीकृत बुवाई : समान आकार और गोलाकार रूप मिलने से बीजों को बोना आसान होता है। इससे बुआई की दक्षता बढ़ती है और फसल पक्तिया समान रूप से विकसित होती हैं। पेलेटेड बीजों के उपयोग से प्रति हेक्टेयर बीजों की खपत कम होती है और थिनिंग/ घने पौधों को उखाड़ने का खर्चा नहीं लगता है।

2. अंकुरण क्षमता में वृद्धि : गोलीकृत बीज अधिक मजबूत और स्वस्थ पौधे विकसित करते हैए जिनमें पर्यावरणीय तनाव को सहने की बेहतर क्षमता होती है।

3. प्रारंभिक पादप सुरक्षा : अंकुरण के शुरुआती 15–20 दिन किसी भी पौधे के जीवनकाल के लिए सबसे संवेदनशील होते हैं। गोलिकरण सामग्री में मिलाए गए फफूंदनाशी और कीटनाशक बीज के चारों ओर एक सुरक्षा कवच बना लेते हैं। यह कवच मिट्टी में मौजूद हानिकारक रोगों एवं कीटों से नवजात पौधे की रक्षा करता है।

4. सूक्ष्म पोषक तत्वों की त्वरित उपलब्धता : रेडीमेट गोलिकृत बीज के आवरण में ही फास्फोरस, जिंक, बोरान, मैंगनीज और आयरन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व मौजूद होते हैं ये पोषक तत्व पानी में घुलकर सीधे जड़ों को मिलते हैं, जिससे पौधे की प्रारंभिक वृद्धि बहुत तेज और स्वस्थ होती है।

5. जैविक संवर्धन और पर्यावरण अनुकूलता : यह तकनीक जैविक खेती के लिए एक वरदान सिद्ध हो रही है। बायो–पेलेटिंग में रासायनिक खादों के स्थान पर बीजों के ऊपर राइजोबियम, एजोटोबैक्टर या ट्राइकोडर्मा जैसे लाभकारी सूक्ष्मजीवों की कोटिंग की जाती है। दलहनी में राइजोबियम पेलेटिंग से पौधों की जड़ों में ग्रंथियों का निर्माण तेजी से होता है, जिससे हवा से नाइट्रोजन सोखने की क्षमता बढ़ती है।

6. शुष्क और विपरीत परिस्थितियों में जीवन रक्षा : भारत जैसे देशों में जहाँ कृषि काफी हद तक मानसून पर निर्भर है, वहाँ यह तकनीक बहुत उपयोगी है। पेलेटिंग में उपयोग होने वाले कुछ विशेष बहुलक अपने वजन से कई गुना अधिक पानी सोख सकते हैं। यदि बुवाई के बाद कुछ दिनों तक बारिश न हो, तो भी यह आवरण नमी को सोखकर रखता है और बीज को सूखने से बचाता है। इसके अतिरिक्त, पेलेटेड बीज भारी होने के कारण तेज हवा या पानी के बहाव से अपनी जगह से नहीं खिसकते।

7. शुष्क क्षेत्रों में टिकाऊ कृषि के लिए कम लागत वाले गोलीकृत बीज

एक व्यावहारिक, पर्यावरण अनुकूल और विस्तार योग्य समाधान प्रदान करते है। इन गोलीकृत बीजों में खनिज आधारित उर्वरक जैविक बंधक और जल–अवशोषक सामग्री शामिल होती है, जो संसाधनों की बचत करते हुए पौधों की प्रारंभिक वृद्धि को प्रोत्साहित करती है। यह तकनीक बोज स्थापना में सुधार लाकर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने और सूखा प्रभावित क्षेत्रों में अनुक्त और टिकाऊ कृषि प्रणालियां विकसित करने में मदद करती है। प्राकृतिक तथा जैविक खेतो प्रणालियों में, गोलीकृत बीज विशेष रूप से मानसून पूर्व शुष्म बुआई के लिए उपयोग किए जाते हैं जिससे मानसून के आगमन पर तीय और समान अकुरण सुनिश्चित होता है। कम और अनियमित वां पोषक तत्वों की कमी बाली मृदा तथा तेजी से नमी हास की स्थितियों में बीज गोलीकरण न केवल अकुर स्थापना और फसल जीवित रहने की दर बढ़ाता है, बल्कि इनपुट लागत और बाहरी रसायनों पर निर्भरता को भी पटाता है। जलवायु परिवर्तन के परिदृश्यों के कारण शुष्क क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन अपेक्षित है। वर्षा के पूर्वानुमानों में परिवर्तनीयता और अनिश्चितता बहुत अधिक है। ऐसे में बीज गोलीकरण जैसी सरल, सस्ती और प्रभावी तकनीकें किसानों को बदलते मौसम के अनुरूप अधिक स्थायी, अनुकूल और उत्पादक कृषि प्रणाली अपनाने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

❋❋❋

MODERN MAS

A Symbol of Prosperity

Estd. : 1978

Anurag Jain : 94141-89984
Ashish Jain : 94142-42432
Ph. : 0744-2333603

उच्च क्वालिटी एवं "A" ग्रेड कम्पनी की
कृषि दवाईयाँ थोक एवं रिटेल में उपलब्ध।

MODERN AGRICULTURE SERVICE

Deals in : All kinds of Pesticide & Spray Machine

Regd. Office : Opp. Petrol Pump, Nayapura, Kota-324001 (Raj.)
Email : modernkota@rediffmail.com

रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869 पंजीयक समाचार पत्र भारत सरकार पोस्टल पंजीकृत संख्या कोटा/323/2023–25

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly Owned by Cooperatives

International Year of Cooperatives 2025
Cooperatives Build a Better World

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly Owned by Cooperatives

इफको नैनो उर्वरक अपनाएं
अधिक गुणवत्ता और उपज पाएं

नैनो यूरिया एवं **नैनो डीएपी**
की खरीद पर प्रति बोतल
रू. 10,000/-
का आकस्मिक
दुर्घटना बीमा मुफ्त*

नैनो जिंक
1 मि.ली. नैनो जिंक प्रति लीटर पाली के अनुपात में घोल बनाकर 30-35 दिन की फसल अवस्था में पत्तियों पर छिड़काव करें।

नैनो कॉपर
1 मि.ली. नैनो कॉपर प्रति लीटर पाली के अनुपात में घोल बनाकर 30-35 दिन की फसल अवस्था में पत्तियों पर छिड़काव करें।

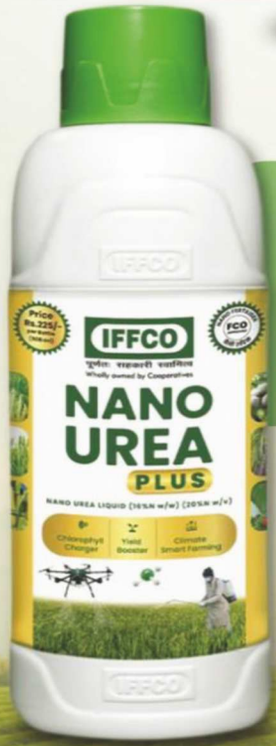

नैनो यूरिया प्लस
4 मि.ली. नैनो यूरिया प्रति लीटर पानी में घोलकर प्रति छिड़काव 500 मि.ली. मात्रा का दो बार, 35-40 दिन एवं 55-60 दिन पर छिड़काव करें।

नैनो डीएपी तरल
नैनो डीएपी का प्रयोग बीज उपचार में 5 मि.ली. प्रति किलो बीज एवं जड़ उपचार में 5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर करें। इसके पश्चात खड़ी फसल में 35-40 दिन में 4 मि.ली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर पत्तियों पर छिड़काव करें।

नैनो यूरिया एवं **नैनो डीएपी**
का उपयोग करने से
पारंपरिक उर्वरकों में
50 % की कटौती

इंडियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड, राजस्थान

स्वामी प्रकाशन : डॉ. महेन्द्र सिंह, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Website : https://aukota.org
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com
दूरभाष : 0744- 2326727

पुस्त प्रेष्य

स्वामी निदेशक प्रसार शिक्षा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा प्रकाशक डॉ. महेन्द्र सिंह, मुद्रक श्री जमील अहमद, मैसर्स डायमण्ड प्रिन्टर्स, शॉप नं. 2, काली मस्जिद के पास, नई धानमण्डी, कोटा से मुद्रित एवं निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा, राज. से प्रकाशित, प्रधान संपादक डॉ. महेन्द्र सिंह